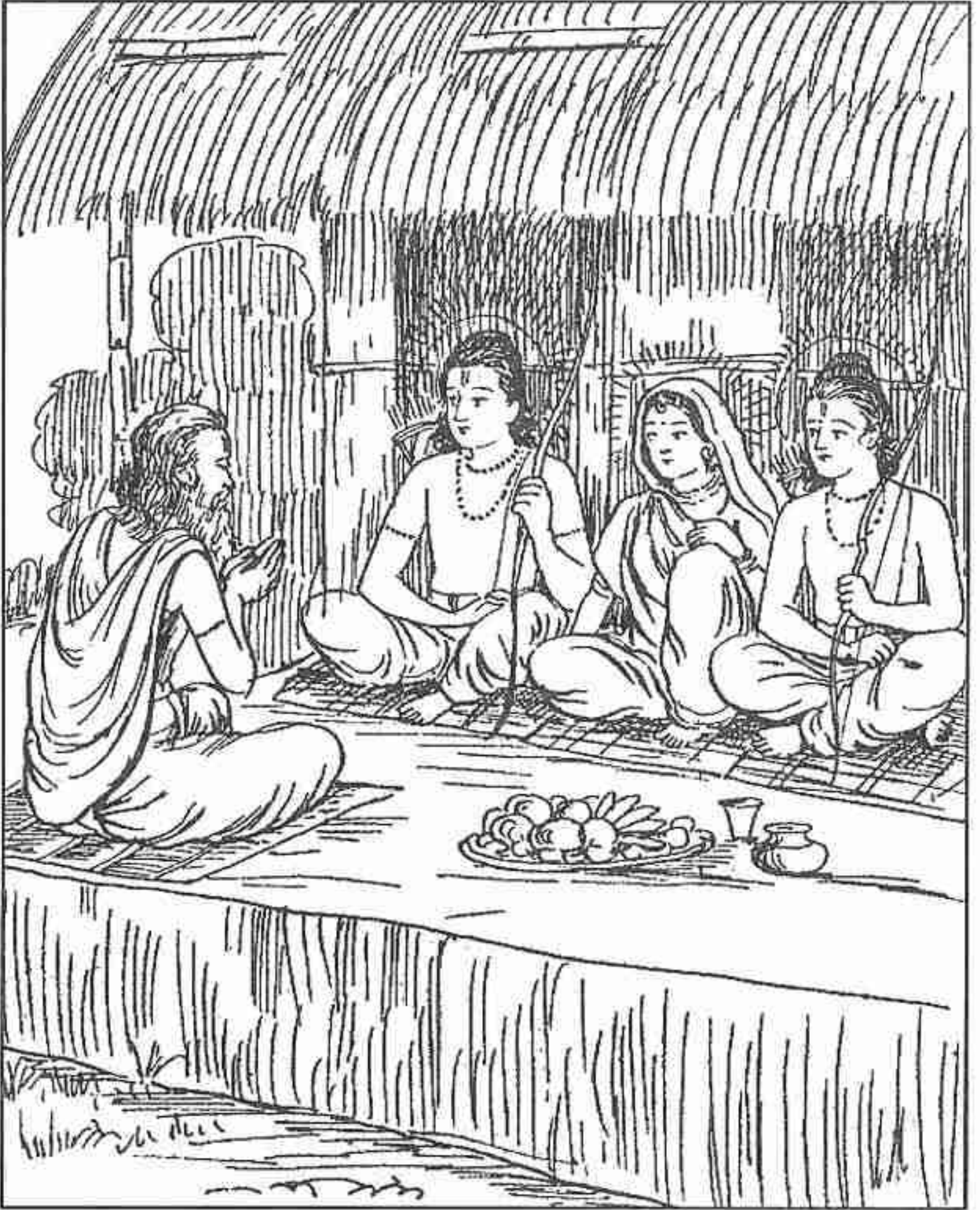


अत्रिके अतिथि



करि पूजा कहि बचन सुहाए । दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीरामचरितमानस

तृतीय सोपान

अरण्यकाण्ड

श्लोक

मूलं धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम्।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शङ्करं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलङ्कशमनं श्रीरामभूप्रियम् ॥ १ ॥

धर्मरूपी वृक्षके मूल, विवेकरूपी समुद्रको आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमलके [विकसित करनेवाले] सूर्य, पापरूपी घोर अन्धकारको निश्चय ही मिटानेवाले, तीनों तापोंको हरनेवाले, मोहरूपी बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न करनेकी विधि (क्रिया) में आकाशसे उत्पन्न पवनस्वरूप, ब्रह्माजीके वंशज (आत्मज) तथा कलङ्कनाशक महाराज श्रीरामचन्द्रजीके प्रिय श्रीशङ्करजीकी मैं वन्दना करता हूँ ॥ १ ॥

सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरम्।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥ २ ॥

जिनका शरीर जलयुक्त मेघोंके समान सुन्दर (श्यामवर्ण) एवं आनन्दघन है, जो सुन्दर [वल्लकलका] पीतवस्त्र धारण किये हैं, जिनके हाथोंमें बाण और धनुष हैं, कमर उत्तम तरकसके भारसे सुशोभित है, कमलके समान विशाल नेत्र हैं और मस्तकपर जटाजूट धारण किये हैं, उन अत्यन्त शोभायमान श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित मार्गमें चलते हुए आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ ॥ २ ॥

सो०— उमा राम गुण गूढ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह विमूढ जे हरि विमुख न धर्म रति ॥

हे पार्वती ! श्रीरामजीके गुण गूढ़ हैं, पण्डित और मुनि उन्हें समझकर वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो भगवान्से विमुख हैं और जिनका धर्ममें प्रेम नहीं है, वे महामूढ़ [उन्हें सुनकर] मोहको प्राप्त होते हैं।

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई ॥
अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन ॥

पुरवासियोंके और भरतजीके अनुपम और सुन्दर प्रेमका मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार गान किया। अब देवता, मनुष्य और मुनियोंके मनको भानेवाले प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वे अत्यन्त पवित्र चरित्र सुनो, जिन्हें वे वनमें कर रहे हैं ॥ १ ॥

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए ॥
सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर ॥

एक बार सुन्दर फूल चुनकर श्रीरामजीने अपने हाथोंसे भाँति-भाँतिके गहने बनाये और सुन्दर स्फटिकशिलापर बैठे हुए प्रभुने आदरके साथ वे गहने श्रीसीताजीको पहनाये ॥ २ ॥

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा ॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा ॥

देवराज इन्द्रका मूर्ख पुत्र जयन्त कौआका रूप धरकर श्रीरघुनाथजीका बल देखना चाहता है। जैसे महान् मन्दबुद्धि चींटी समुद्रका थाह पाना चाहती हो ॥ ३ ॥

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा ॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना ॥

वह मूढ़, मन्दबुद्धि कारणसे (भगवान्के बलकी परीक्षा करनेके लिये) बना हुआ कौआ सीताजीके चरणोंमें चोंच मारकर भागा। जब रक्त बह चला, तब श्रीरघुनाथजीने जाना और धनुषपर सींक (सरकंडे)का बाण सन्धान किया ॥ ४ ॥

दो०— अति कृपाल रघुनायक सदा दीन पर नेह।

ता सन आइ कीन्ह छलु मूरख अवगुन गेह ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी, जो अत्यन्त ही कृपालु हैं और जिनका दीनोंपर सदा प्रेम रहता है, उनसे भी उस अवगुणोंके घर मूर्ख जयन्तने आकर छल किया ॥ १ ॥

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि बायस भय पावा ॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं ॥

मन्त्रसे प्रेरित होकर वह ब्रह्मबाण दौड़ा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। वह अपना असली रूप धरकर पिता इन्द्रके पास गया, पर श्रीरामजीका विरोधी जानकर इन्द्रने उसको नहीं रखा ॥ १ ॥

भा निरास उपजी मन त्रासा। जथा चक्र भय रिषि दुर्बासा ॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका ॥

तब वह निराश हो गया, उसके मनमें भय उत्पन्न हो गया; जैसे दुर्वासा ऋषिको चक्रसे भय हुआ था। वह ब्रह्मलोक, शिवलोक आदि समस्त लोकोंमें थका हुआ और भय-शोकसे व्याकुल होकर भागता फिरा ॥ २ ॥

काहूँ बैठन कहा न ओही। राखि को सकड़ राम कर द्रोही ॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिष सुनु हरिजाना ॥

[पर रखना तो दूर रहा] किसीने उसे बैठने तकके लिये नहीं कहा। श्रीरामजीके द्रोहीको कौन रख सकता है? [काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़! सुनिये, उसके लिये माता मृत्युके समान, पिता यमराजके समान और अमृत विषके समान हो जाता है ॥ ३ ॥

मित्र करइ सत रिपु कै करनी। ता कहँ बिबुधनदी बैतरनी ॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ॥

मित्र सैकड़ों शत्रुओंकी-सी करनी करने लगता है। देवनदी गङ्गाजी उसके लिये वैतरणी (यमपुरीकी नदी) हो जाती है। हे भाई! सुनिये, जो श्रीरघुनाथजीके विमुख होता है, समस्त जगत् उसके लिये अग्निसे भी अधिक गरम (जलानेवाला) हो जाता है ॥ ४ ॥

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता ॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही ॥

नारदजीने जयन्तको व्याकुल देखा तो उन्हें दया आ गयी; क्योंकि संतोंका चित्त बड़ा कोमल होता है। उन्होंने उसे [समझाकर] तुरंत श्रीरामजीके पास भेज दिया। उसने [जाकर] पुकारकर कहा— हे शरणागतके हितकारी! मेरी रक्षा कीजिये ॥ ५ ॥

आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई ॥
अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मैं मतिमंद जानि नहिं पाई ॥

आतुर और भयभीत जयन्तने जाकर श्रीरामजीके चरण पकड़ लिये [और कहा—] हे दयालु रघुनाथजी! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आपके अतुलित बल और आपकी अतुलित प्रभुता (सामर्थ्य) को मैं मन्दबुद्धि जान नहीं पाया था ॥ ६ ॥

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आयउँ ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एकनयन करि तजा भवानी ॥

अपने किये हुए कर्मसे उत्पन्न हुआ फल मैंने पा लिया। अब हे प्रभु! मेरी रक्षा कीजिये। मैं आपकी शरण तककर आया हूँ। [शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! कृपालु श्रीरघुनाथजीने उसकी अत्यन्त आर्त [दुःखभरी] वाणी सुनकर उसे एक आँखका काना करके छोड़ दिया ॥ ७ ॥

सो०— कीन्ह मोह बस द्रोह जद्यपि तेहि कर बध उचित।

प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपाल रघुबीर सम ॥ २ ॥

उसने मोहवश द्रोह किया था, इसलिये यद्यपि उसका वध ही उचित था, पर प्रभुने

कृपा करके उसे छोड़ दिया। श्रीरामजीके समान कृपालु और कौन होगा ? ॥ २ ॥
 रघुपति चित्रकूट बसि नाना। चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥
 बहुरि राम अस मन अनुमाना। होइहि भीर सबहिं मोहि जाना ॥

चित्रकूटमें बसकर श्रीरघुनाथजीने बहुत-से चरित्र किये, जो कानोंको अमृतके समान [प्रिय] हैं। फिर (कुछ समय पश्चात्) श्रीरामजीने मनमें ऐसा अनुमान किया कि मुझे सब लोग जान गये हैं, इससे [यहाँ] बड़ी भीड़ हो जायगी ॥ १ ॥

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
 अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ ॥

[इसलिये] सब मुनियोंसे विदा लेकर सीताजीसहित दोनों भाई चले! जब प्रभु अत्रिजीके आश्रममें गये, तो उनका आगमन सुनते ही महामुनि हर्षित हो गये ॥ २ ॥

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए ॥
 करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए ॥

शरीर पुलकित हो गया, अत्रिजी उठकर दौड़े। उन्हें दौड़े आते देखकर श्रीरामजी और भी शीघ्रतासे चले आये। दण्डवत् करते हुए ही श्रीरामजीको [उठाकर] मुनिने हृदयसे लगा लिया और प्रेमाश्रुओंके जलसे दोनों जनोंको (दोनों भाइयोंको) नहला दिया ॥ ३ ॥

देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने ॥
 करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए ॥

श्रीरामजीकी छबि देखकर मुनिके नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रममें ले आये। पूजन करके सुन्दर वचन कहकर मुनिने मूल और फल दिये, जो प्रभुके मनको बहुत रुचे ॥ ४ ॥

सो० — प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।

मुनिबर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत ॥ ३ ॥

प्रभु आसनपर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देखकर परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे— ॥ ३ ॥

छं० — नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं।
 भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं ॥

हे भक्तवत्सल! हे कृपालु! हे कोमल स्वभाववाले! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषोंको अपना परमधाम देनेवाले आपके चरणकमलोंको मैं भजता हूँ ॥ १ ॥

निकाम श्याम सुंदरं। भवांबुनाथ मंदरं।
 प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं ॥

आप नितान्त सुन्दर श्याम, संसार (आवागमन) रूपी समुद्रको मथनेके लिये

मन्दराचलरूप, फूले हुए कमलके समान नेत्रोंवाले और मद आदि दोषोंसे छुड़ानेवाले हैं ॥ २ ॥

प्रलंब बाहु विक्रमं । प्रभोऽप्रमेय वैभवं ।
निषंग चाप सायकं । धरं त्रिलोक नायकं ॥

हे प्रभो ! आपकी लंबी भुजाओंका पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय (बुद्धिके परे अथवा असीम) है । आप तरकस और धनुष-बाण धारण करनेवाले तीनों लोकोंके स्वामी, ॥ ३ ॥

दिनेश वंश मंडनं । महेश चाप खंडनं ।
मुनींद्र संत रंजनं । सुरारि वृंद भंजनं ॥

सूर्यवंशके भूषण, महादेवजीके धनुषको तोड़नेवाले, मुनिराजों और संतोंको आनन्द देनेवाले तथा देवताओंके शत्रु असुरोंके समूहका नाश करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

मनोज वैरि वंदितं । अजादि देव सेवितं ।
विशुद्ध बोध विग्रहं । समस्त दूषणापहं ॥

आप कामदेवके शत्रु महादेवजीके द्वारा वन्दित, ब्रह्मा आदि देवताओंसे सेवित, विशुद्ध ज्ञानमय विग्रह और समस्त दोषोंको नष्ट करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

नमामि इंदिरा पतिं । सुखाकरं सतां गतिं ।
भजे सशक्ति सानुजं । शची पति प्रियानुजं ॥

हे लक्ष्मीपते ! हे सुखोंकी खान और सत्पुरुषोंकी एकमात्र गति ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे शचीपति (इन्द्र) के प्रिय छोटे भाई (वामनजी) ! स्वरूपा-शक्ति श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित आपको मैं भजता हूँ ॥ ६ ॥

त्वदंघ्रि मूल ये नराः । भजंति हीन मत्सराः ।
पतंति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि संकुले ॥

जो मनुष्य मत्सर (डाह) रहित होकर आपके चरणकमलोंका सेवन करते हैं, वे तर्क-वितर्क (अनेक प्रकारके सन्देह) रूपी तरङ्गोंसे पूर्ण संसाररूपी समुद्रमें नहीं गिरते (आवागमनके चक्करमें नहीं पड़ते) ॥ ७ ॥

विविक्त वासिनः सदा । भजंति मुक्तये मुदा ।
निरस्य इंद्रियादिकं । प्रयांति ते गतिं स्वकं ॥

जो एकान्तवासी पुरुष मुक्तिके लिये, इंद्रियादिका निग्रह करके (उन्हें विषयोंसे हटाकर) प्रसन्नतापूर्वक आपको भजते हैं, वे स्वकीय गतिको (अपने स्वरूपको) प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

तमेकमद्भुतं प्रभुं । निरीहमीश्वरं विभुं ।
जगद्गुरुं च शाश्वतं । तुरीयमेव केवलं ॥

उन (आप) को जो एक (अद्वितीय), अद्भुत (मायिक जगत्से विलक्षण), प्रभु (सर्वसमर्थ), इच्छारहित, ईश्वर (सबके स्वामी), व्यापक, जगद्गुरु, सनातन (नित्य), तुरीय (तीनों गुणोंसे सर्वथा परे) और केवल (अपने स्वरूपमें स्थित) हैं ॥ ९ ॥

भजामि भाव वल्लभं । कुयोगिनां सुदुर्लभं ।
स्वभक्त कल्प पादपं । समं सुसेव्यमन्वहं ॥

[तथा] जो भावप्रिय, कुयोगियों (विषयी पुरुषों)के लिये अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तोंके लिये कल्पवृक्ष (अर्थात् उनकी समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले), सम (पक्षपातरहित) और सदा सुखपूर्वक सेवन करनेयोग्य हैं; मैं निरन्तर भजता हूँ ॥ १० ॥

अनूप रूप भूपतिं । नतोऽहमुर्विजा पतिं ।
प्रसीद मे नमामि ते । पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥

हे अनुपम सुन्दर! हे पृथ्वीपति! हे जानकीनाथ! मैं आपको प्रणाम करता हूँ। मुझपर प्रसन्न होइये, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणकमलोंकी भक्ति दीजिये ॥ ११ ॥

पठन्ति ये स्तवं इदं । नरादरेण ते पदं ।
व्रजन्ति नात्र संशयं । त्वदीय भक्ति संयुताः ॥

जो मनुष्य इस स्तुतिको आदरपूर्वक पढ़ते हैं, वे आपकी भक्तिसे युक्त होकर आपके परमपदको प्राप्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥

दो०— बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि ।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि ॥ ४ ॥

मुनिने [इस प्रकार] विनती करके और फिर सिर नवाकर, हाथ जोड़कर कहा— हे नाथ! मेरी बुद्धि आपके चरणकमलोंको कभी न छोड़े ॥ ४ ॥

अनुसुइया के पद गहि सीता । मिली बहोरि सुसील विनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई । आशिष देइ निकट बैठाई ॥

फिर परम शीलवती और विनम्र श्रीसीताजी [अत्रिजीकी पत्नी] अनसूयाजीके चरण पकड़कर उनसे मिलीं। ऋषिपत्नीके मनमें बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशिष देकर सीताजीको पास बैठा लिया ॥ १ ॥

दिव्य बसन भूषण पहिराए । जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी । नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ॥

और उन्हें ऐसे दिव्य वस्त्र और आभूषण पहनाये, जो नित्य-नये निर्मल और सुहावने बने रहते हैं। फिर ऋषिपत्नी उनके बहाने मधुर और कोमल वाणीसे स्त्रियोंके कुछ धर्म बखानकर कहने लगीं ॥ २ ॥

मातु पिता भ्राता हितकारी । मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बयदेही । अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥

हे राजकुमारी! सुनिये, माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं, परन्तु ये सब एक सीमा तक ही [सुख] देनेवाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो [मोक्षरूप] असीम [सुख] देनेवाला है। वह स्त्री अधम है, जो ऐसे पतिकी सेवा नहीं करती ॥ ३ ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी । आपद काल परिखिअहिं चारी ॥
वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥

धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री—इन चारोंकी विपत्तिके समय ही परीक्षा होती है।
वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त ही दीन— ॥ ४ ॥

ऐसेहु पति कर किऐँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकइ धर्म एक व्रत नेमा । कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥

ऐसे भी पतिका अपमान करनेसे स्त्री यमपुरमें भाँति-भाँतिके दुःख पाती है। शरीर, वचन और मनसे पतिके चरणोंमें प्रेम करना स्त्रीके लिये, बस, यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है ॥ ५ ॥

जग पतिव्रता चारि बिधि अहहीं । वेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं ॥

जगत्में चार प्रकारकी पतिव्रताएँ हैं। वेद, पुराण और संत सब ऐसा कहते हैं कि उत्तम श्रेणीकी पतिव्रताके मनमें ऐसा भाव बसा रहता है कि जगत्में [मेरे पतिको छोड़कर] दूसरा पुरुष स्वप्नमें भी नहीं है ॥ ६ ॥

मध्यम परपति देखइ कैसें । भ्राता पिता पुत्र निज जैसें ॥
धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकिष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥

मध्यम श्रेणीकी पतिव्रता पराये पतिको कैसे देखती है, जैसे वह अपना सगा भाई, पिता या पुत्र हो। (अर्थात् समान अवस्थावालेको वह भाईके रूपमें देखती है, बड़ेको पिताके रूपमें और छोटेको पुत्रके रूपमें देखती है।) जो धर्मको विचारकर और अपने कुलकी मर्यादा समझकर बची रहती है, वह निकृष्ट (निम्नश्रेणीकी) स्त्री है, ऐसा वेद कहते हैं ॥ ७ ॥

बिनु अवसर भय तें रह जोई । जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥

और जो स्त्री मौका न मिलनेसे या भयवश पतिव्रता बनी रहती है, जगत्में उसे अधम स्त्री जानना। पतिको धोखा देनेवाली जो स्त्री पराये पतिसे रति करती है, वह तो सौ कल्प तक रौरव नरकमें पड़ी रहती है ॥ ८ ॥

छन सुख लागि जनम सत कोटी । दुख न समुझ तेहि सम को खोटी ॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई । पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई ॥

क्षणभरके सुखके लिये जो सौ करोड़ (असंख्य) जन्मोंके दुःखको नहीं समझती, उसके समान दुष्टा कौन होगी । जो स्त्री छल छोड़कर पातिव्रतधर्मको ग्रहण करती है, वह बिना ही परिश्रम परम गतिको प्राप्त करती है ॥ ९ ॥

पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई । बिधवा होइ पाइ तरुनाई ॥

किन्तु जो पतिके प्रतिकूल चलती है, वह जहाँ भी जाकर जन्म लेती है, वहीं जवानी पाकर (भरी जवानीमें) विधवा हो जाती है ॥ १० ॥

सो० — सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।

जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥ ५ (क) ॥

स्त्री जन्मसे ही अपवित्र है, किन्तु पतिकी सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति प्राप्त कर लेती है । [पातिव्रतधर्मके कारण ही] आज भी 'तुलसीजी' भगवान्को प्रिय हैं और चारों वेद उनका यश गाते हैं ॥ ५ (क) ॥

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं ।

तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ॥ ५ (ख) ॥

हे सीता ! सुनो, तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियाँ पातिव्रतधर्मका पालन करेंगी । तुम्हें तो श्रीरामजी प्राणोंके समान प्रिय हैं, यह (पातिव्रतधर्मकी) कथा तो मैंने संसारके हितके लिये कही है ॥ ५ (ख) ॥

सुनि जानकीं परम सुखु पावा । सादर तासु चरन सिरु नावा ॥

तब मुनि सन कह कृपानिधाना । आयसु होइ जाउँ बन आना ॥

जानकीजीने सुनकर परम सुख पाया और आदरपूर्वक उनके चरणोंमें सिर नवाया । तब कृपाकी खान श्रीरामजीने मुनिसे कहा—आज्ञा हो तो अब दूसरे वनमें जाऊँ ॥ १ ॥

संतत मो पर कृपा करेहू । सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥

धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी । सुनि सप्रेम बोले मुनि ग्यानी ॥

मुझपर निरन्तर कृपा करते रहियेगा और अपना सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा । धर्मधुरन्धर प्रभु श्रीरामजीके वचन सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेमपूर्वक बोले— ॥ २ ॥

जासु कृपा अज सिव सनकादी । चहत सकल परमारथ बादी ॥

ते तुम्ह राम अकाम पिआरे । दीन बंधु मृदु बचन उचारे ॥

ब्रह्मा, शिव और सनकादि सभी परमार्थवादी (तत्त्ववेत्ता) जिनकी कृपा चाहते हैं, हे रामजी ! आप वही निष्काम पुरुषोंके भी प्रिय और दीनोंके बन्धु भगवान् हैं, जो इस प्रकार कोमल वचन बोल रहे हैं ॥ ३ ॥

अब जानी मैं श्री चतुराई । भजी तुम्हहि सब देव बिहाई ॥

जेहि समान अतिसय नहिं कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥

अब मैंने लक्ष्मीजीकी चतुराई समझी, जिन्होंने सब देवताओंको छोड़कर आपहीको

भजा । जिसके समान [सब बातोंमें] अत्यन्त बड़ा और कोई नहीं है, उसका शील भला, ऐसा क्यों न होगा ? ॥ ४ ॥

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल बह पुलक सरीरा ॥

मैं किस प्रकार कहूँ कि हे स्वामी ! आप अब जाइये ? हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं, आप ही कहिये । ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभुको देखने लगे । मुनिके नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बह रहा है और शरीर पुलकित है ॥ ५ ॥

छं०— तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मैं दीख जप तप का किए ॥
जप जोग धर्म समूह तें नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई ॥

मुनि अत्यन्त प्रेमसे पूर्ण हैं; उनका शरीर पुलकित है और नेत्रोंको श्रीरामजीके मुखकमलमें लगाये हुए हैं । [मनमें विचार रहे हैं कि] मैंने ऐसे कौन-से जप-तप किये थे, जिसके कारण मन, ज्ञान, गुण और इन्द्रियोंसे परे प्रभुके दर्शन पाये । जप, योग और धर्म-समूहसे मनुष्य अनुपम भक्तिको पाता है । श्रीरघुवीरके पवित्र चरित्रको तुलसीदास रात-दिन गाता है ।

दो०— कलिमल समन दमन मन राम सुजस सुखमूल ।

सादर सुनहिं जे तिन्ह पर राम रहहिं अनुकूल ॥ ६ (क) ॥

श्रीरामचन्द्रजीका सुन्दर यश कलियुगके पापोंका नाश करनेवाला, मनको दमन करनेवाला और सुखका मूल है । जो लोग इसे आदरपूर्वक सुनते हैं, उनपर श्रीरामजी प्रसन्न रहते हैं ॥ ६ (क) ॥

सो०— कठिन काल मल कोस धर्म न ग्यान न जोग जप ।

परिहरि सकल भरोस रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥ ६ (ख) ॥

यह कठिन कलिकाल पापोंका खजाना है; इसमें न धर्म है, न ज्ञान है और न योग तथा जप ही है । इसमें तो जो लोग सब भरोसोंको छोड़कर श्रीरामजीको ही भजते हैं, वे ही चतुर हैं ॥ ६ (ख) ॥

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा । चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
आगें राम अनुज पुनि पाछें । मुनि बर बेष बने अति काछें ॥

मुनिके चरणकमलोंमें सिर नवाकर देवता, मनुष्य और मुनियोंके स्वामी श्रीरामजी वनको चले । आगे श्रीरामजी हैं और उनके पीछे छोटे भाई लक्ष्मणजी हैं । दोनों ही मुनियोंका सुन्दर वेष बनाये अत्यन्त सुशोभित हैं ॥ १ ॥

उभय बीच श्री सोहड़ कैसी । ब्रह्म जीव बिच माया जैसी ॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा । पति पहिचानि देहिं बर बाटा ॥

दोनोंके बीचमें श्रीजानकीजी कैसी सुशोभित हैं, जैसे ब्रह्म और जीवके बीच माया हो । नदी, वन, पर्वत और दुर्गम घाटियाँ, सभी अपने स्वामीको पहचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं ॥ २ ॥

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया । करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया ॥
मिला असुर बिराध मग जाता । आवतहीं रघुबीर निपाता ॥

जहाँ-जहाँ देव श्रीरघुनाथजी जाते हैं, वहाँ-वहाँ बादल आकाशमें छाया करते जाते हैं । रास्तेमें जाते हुए विराध राक्षस मिला । सामने आते ही श्रीरघुनाथजीने उसे मार डाला ॥ ३ ॥
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा । देखि दुखी निज धाम पठावा ॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा । सुंदर अनुज जानकी संगी ॥

[श्रीरामजीके हाथसे मरते ही] उसने तुरंत सुन्दर (दिव्य) रूप प्राप्त कर लिया । दुःखी देखकर प्रभुने उसे अपने परम धामको भेज दिया । फिर वे सुन्दर छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीके साथ वहाँ आये जहाँ मुनि शरभंगजी थे ॥ ४ ॥

दो०—देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग ।

सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग ॥ ७ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका मुखकमल देखकर मुनिश्रेष्ठके नेत्ररूपी भौंरे अत्यन्त आदरपूर्वक उसका [मकरन्दरस] पान कर रहे हैं । शरभंगजीका जन्म धन्य है ॥ ७ ॥

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला । संकर मानस राजमराला ॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा । सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा ॥

मुनिने कहा—हे कृपालु रघुवीर ! हे शंकरजीके मनरूपी मानसरोवरके राजहंस ! सुनिये, मैं ब्रह्मलोकको जा रहा था । [इतनेमें] कानोंसे सुना कि श्रीरामजी वनमें आवेंगे ॥ १ ॥
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती । अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती ॥
नाथ सकल साधन मैं हीना । कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥

तबसे मैं दिन-रात आपकी राह देखता रहा हूँ । अब (आज) प्रभुको देखकर मेरी छाती शीतल हो गयी । हे नाथ ! मैं सब साधनोंसे हीन हूँ । आपने अपना दीन सेवक जानकर मुझपर कृपा की है ॥ २ ॥

सो कछु देव न मोहि निहोरा । निज पन राखेउ जन मन चोरा ॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी । जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी ॥

हे देव ! यह कुछ मुझपर आपका एहसान नहीं है । हे भक्त-मनचोर ! ऐसा करके आपने अपने प्रणकी ही रक्षा की है । अब इस दीनके कल्याणके लिये तबतक यहाँ ठहरिये, जबतक मैं शरीर छोड़कर आपसे [आपके धाममें न] मिलूँ ॥ ३ ॥

जोग जग्य जप तप व्रत कीन्हा । प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा ॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदयँ छाड़ि सब संग्गा ॥

योग, यज्ञ, जप, तप जो कुछ व्रत आदि भी मुनिने किया था, सब प्रभुको समर्पण करके बदलेमें भक्तिका वरदान ले लिया। इस प्रकार [दुर्लभ भक्ति प्राप्त करके फिर] चिता रचकर मुनि शरभंगजी हृदयसे सब आसक्ति छोड़कर उसपर जा बैठे ॥ ४ ॥

दो०— सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम ।

मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम ॥ ८ ॥

हे नीले मेघके समान श्याम शरीरवाले सगुणरूप श्रीरामजी ! सीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित प्रभु (आप) निरन्तर मेरे हृदयमें निवास कीजिये ॥ ८ ॥

अस कहि जोग अग्नि तनु जारा । राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहिं भेद भगति बर लयऊ ॥

ऐसा कहकर शरभंगजीने योगाग्निसे अपने शरीरको जला डाला और श्रीरामजीकी कृपासे वे वैकुण्ठको चले गये। मुनि भगवान्में लीन इसलिये नहीं हुए कि उन्होंने पहले ही भेद-भक्तिका वर ले लिया था ॥ १ ॥

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी । सुखी भए निज हृदयँ बिसेषी ॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृदा । जयति प्रनत हित करुना कंदा ॥

ऋषिसमूह मुनिश्रेष्ठ शरभंगजीकी यह [दुर्लभ] गति देखकर अपने हृदयमें विशेषरूपसे सुखी हुए। समस्त मुनिवृन्द श्रीरामजीकी स्तुति कर रहे हैं [और कह रहे हैं] शरणागतहितकारी करुणाकन्द (करुणाके मूल) प्रभुकी जय हो ! ॥ २ ॥

पुनि रघुनाथ चले बन आगे । मुनिबर बृद बिपुल संग लागे ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया । पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥

फिर श्रीरघुनाथजी आगे वनमें चले। श्रेष्ठ मुनियोंके बहुत-से समूह उनके साथ हो लिये। हड्डियोंका ढेर देखकर श्रीरघुनाथजीको बड़ी दया आयी, उन्होंने मुनियोंसे पूछा ॥ ३ ॥

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी । सबदरसी तुम्ह अंतरजामी ॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए । सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥

[मुनियोंने कहा—] हे स्वामी ! आप सर्वदर्शी (सर्वज्ञ) और अन्तर्यामी (सबके हृदयकी जाननेवाले) हैं। जानते हुए भी [अनजानकी तरह] हमसे कैसे पूछ रहे हैं ? राक्षसोंके दलोंने सब मुनियोंको खा डाला है [ये सब उन्हींकी हड्डियोंके ढेर हैं]। यह सुनते ही श्रीरघुवीरके नेत्रोंमें जल छा गया (उनकी आँखोंमें करुणाके आँसू भर आये) ॥ ४ ॥

दो०— निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।

सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥ ९ ॥

श्रीरामजीने भुजा उठाकर प्रण किया कि मैं पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित कर दूँगा। फिर समस्त मुनियोंके आश्रमोंमें जा-जाकर उनको [दर्शन एवं सम्भाषणका] सुख दिया ॥ ९ ॥
मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना ॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥

मुनि अगस्त्यजीके एक सुतीक्ष्ण नामक सुजान (ज्ञानी) शिष्य थे, उनकी भगवान्में प्रीति थी। वे मन, बचन और कर्मसे श्रीरामजीके चरणोंके सेवक थे। उन्हें स्वप्नमें भी किसी दूसरे देवताका भरोसा नहीं था ॥ १ ॥

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा ॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहिं दाया ॥

उन्होंने ज्यों ही प्रभुका आगमन कानोंसे सुन पाया, त्यों ही अनेक प्रकारके मनोरथ करते हुए वे आतुरता (शीघ्रता) से दौड़ चले। हे विधाता! क्या दीनबन्धु श्रीरघुनाथजी मुझ-जैसे दुष्टपर भी दया करेंगे? ॥ २ ॥

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाहीं। भगति बिरति न ग्यान मन माहीं ॥

क्या स्वामी श्रीरामजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मुझसे अपने सेवककी तरह मिलेंगे? मेरे हृदयमें दृढ़ विश्वास नहीं होता; क्योंकि मेरे मनमें भक्ति, वैराग्य या ज्ञान कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

नहिं सतसंग जोग जप जागा। नहिं दृढ़ चरन कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की ॥

मैंने न तो सत्सङ्ग, योग, जप अथवा यज्ञ ही किये हैं और न प्रभुके चरणकमलोंमें मेरा दृढ़ अनुराग ही है। हाँ, दयाके भण्डार प्रभुकी एक बानि है कि जिसे किसी दूसरेका सहारा नहीं है, वह उन्हें प्रिय होता है ॥ ४ ॥

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥

[भगवान्की इस बानिका स्मरण आते ही मुनि आनन्दमग्न होकर मन-ही-मन कहने लगे—] अहा! भवबन्धनसे छुड़ानेवाले प्रभुके मुखारविन्दको देखकर आज मेरे नेत्र सफल होंगे। [शिवजी कहते हैं—] हे भवानी! ज्ञानी मुनि प्रेममें पूर्णरूपसे निमग्न हैं। उनकी वह दशा कही नहीं जाती ॥ ५ ॥

दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा ॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई ॥

उन्हें दिशा-विदिशा (दिशाएँ और उनके कोण आदि) और रास्ता, कुछ भी नहीं सूझ रहा है। मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ, यह भी नहीं जानते (इसका

भी ज्ञान नहीं है)। वे कभी पीछे घूमकर फिर आगे चलने लगते हैं और कभी [प्रभुके] गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं ॥ ६ ॥

अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई ॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा ॥

मुनिने प्रगाढ़ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। प्रभु श्रीरामजी वृक्षकी आड़में छिपकर [भक्तकी प्रेमोन्मत्त दशा] देख रहे हैं। मुनिका अत्यन्त प्रेम देखकर भवभय (आवागमनके भय) को हरनेवाले श्रीरघुनाथजी मुनिके हृदयमें प्रकट हो गये ॥ ७ ॥

मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा ॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए ॥

[हृदयमें प्रभुके दर्शन पाकर] मुनि बीच रास्तेमें अचल (स्थिर) होकर बैठ गये। उनका शरीर रोमाञ्चसे कटहलके फलके समान [कण्टकित] हो गया। तब श्रीरघुनाथजी उनके पास चले आये और अपने भक्तकी प्रेमदशा देखकर मनमें बहुत प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥

श्रीरामजीने मुनिको बहुत प्रकारसे जगाया, पर मुनि नहीं जागे; क्योंकि उन्हें प्रभुके ध्यानका सुख प्राप्त हो रहा था। तब श्रीरामजीने अपने राजरूपको छिपा लिया और उनके हृदयमें अपना चतुर्भुजरूप प्रकट किया ॥ ९ ॥

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसें। बिकल हीन मनि फनिबर जैसें ॥
आगें देखि राम तन स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥

तब (अपने इष्ट-स्वरूपके अन्तर्धान होते ही) मुनि कैसे व्याकुल होकर उठे, जैसे श्रेष्ठ (मणिधर) सर्प मणिके बिना व्याकुल हो जाता है। मुनिने अपने सामने सीताजी और लक्ष्मणजीसहित श्यामसुन्दर-विग्रह सुखधाम श्रीरामजीको देखा ॥ १० ॥

परेउ लकुट इव चरनन्हि लागी। प्रेम मगन मुनिबर बड़भागी ॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई ॥

प्रेममें मग्न हुए वे बड़भागी श्रेष्ठ मुनि लाठीकी तरह गिरकर श्रीरामजीके चरणोंमें लग गये। श्रीरामजीने अपनी विशाल भुजाओंसे पकड़कर उन्हें उठा लिया और बड़े प्रेमसे हृदयसे लगा रखा ॥ ११ ॥

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥
राम बदनु बिलोक मुनि ठाढ़ा। मानहुँ चित्र माझ लिखि काढ़ा ॥

कृपालु श्रीरामचन्द्रजी मुनिसे मिलते हुए ऐसे शोभित हो रहे हैं, मानो सोनेके वृक्षसे तमालका वृक्ष गले लगकर मिल रहा हो। मुनि [निस्तब्ध] खड़े हुए [टकटकी लगाकर] श्रीरामजीका मुख देख रहे हैं, मानो चित्रमें लिखकर बनाये गये हों ॥ १२ ॥

दो०— तब मुनि हृदयँ धीर धरि गहि पद बारहिं बार।

निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार ॥ १० ॥

तब मुनिने हृदयमें धीरज धरकर बार-बार चरणोंको स्पर्श किया। फिर प्रभुको अपने आश्रममें लाकर अनेक प्रकारसे उनकी पूजा की ॥ १० ॥

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौं कवन बिधि तोरी ॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सन्मुख खद्योत अँजोरी ॥

मुनि कहने लगे—हे प्रभो! मेरी विनती सुनिये। मैं किस प्रकारसे आपकी स्तुति करूँ? आपकी महिमा अपार है और मेरी बुद्धि अल्प है। जैसे सूर्यके सामने जुगनूका उजाला! ॥ १ ॥

श्याम तामरस दाम शरीरं। जटा मुकुट परिधन मुनिचीरं ॥
पाणि चाप शर कटि तूणीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं ॥

हे नीलकमलकी मालाके समान श्याम शरीरवाले! हे जटाओंका मुकुट और मुनियोंके (वल्कल) वस्त्र पहने हुए, हाथोंमें धनुष-बाण लिये तथा कमरमें तरकस कसे हुए श्रीरामजी! मैं आपको निरन्तर नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः ॥
निसिचर करि वरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाजः ॥

जो मोहरूपी घने वनको जलानेके लिये अग्नि हैं, संतरूपी कमलोंके वनके प्रफुल्लित करनेके लिये सूर्य हैं, राक्षसरूपी हाथियोंके समूहके पछाड़नेके लिये सिंह हैं और भव (आवागमन) रूपी पक्षीके मारनेके लिये बाजरूप हैं, वे प्रभु सदा हमारी रक्षा करें ॥ ३ ॥

अरुण नयन राजीव सुवेशं। सीता नयन चकोर निशेशं ॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विशालं ॥

हे लाल कमलके समान नेत्र और सुन्दर वेषवाले! सीताजीके नेत्ररूपी चकोरके चन्द्रमा, शिवजीके हृदयरूपी मानसरोवरके बालहंस, विशाल हृदय और भुजावाले श्रीरामचन्द्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ४ ॥

संशय सर्प ग्रसन उरगादः। शमन सुकर्कश तर्क विषादः ॥
भव भंजन रंजन सुर यूथः। त्रातु सदा नो कृपा वरूथः ॥

जो संशयरूपी सर्पको ग्रसनेके लिये गरुड़ हैं, अत्यन्त कठोर तर्कसे उत्पन्न होनेवाले विषादका नाश करनेवाले हैं, आवागमनको मिटानेवाले और देवताओंके समूहको आनन्द देनेवाले हैं, वे कृपाके समूह श्रीरामजी सदा हमारी रक्षा करें ॥ ५ ॥

निर्गुण सगुण विषम सम रूपं। ज्ञान गिरा गोतीतमनूपं ॥
अमलमखिलमनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं ॥

हे निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप! हे ज्ञान, वाणी और इन्द्रियोंसे अतीत!

हे अनुपम, निर्मल, सम्पूर्ण दोषरहित, अनन्त एवं पृथ्वीका भार उतारनेवाले श्रीरामचन्द्रजी! मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥

भक्त कल्पपादप आरामः । तर्जन क्रोध लोभ मद कामः ॥
अति नागर भव सागर सेतुः । त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः ॥

जो भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके बगीचे हैं, क्रोध, लोभ, मद और कामको डरानेवाले हैं, अत्यन्त ही चतुर और संसाररूपी समुद्रसे तरनेके लिये सेतुरूप हैं, वे सूर्यकुलकी ध्वजा श्रीरामजी सदा मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

अतुलित भुज प्रताप बल धामः । कलि मल विपुल विभंजन नामः ॥
धर्म वर्म नर्मद गुण ग्रामः । संतत शं तनोतु मम रामः ॥

जिनकी भुजाओंका प्रताप अतुलनीय है, जो बलके धाम हैं, जिनका नाम कलियुगके बड़े भारी पापोंका नाश करनेवाला है, जो धर्मके कवच (रक्षक) हैं और जिनके गुणसमूह आनन्द देनेवाले हैं, वे श्रीरामजी निरन्तर मेरे कल्याणका विस्तार करें ॥ ८ ॥

जदपि बिरज व्यापक अबिनासी । सब के हृदयँ निरन्तर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम कानन चारी ॥

यद्यपि आप निर्मल, व्यापक, अविनाशी और सबके हृदयमें निरन्तर निवास करनेवाले हैं; तथापि हे खरारि श्रीरामजी! लक्ष्मणजी और सीताजीसहित वनमें विचरनेवाले आप इसी रूपमें मेरे हृदयमें निवास कीजिये ॥ ९ ॥

जे जानहिं ते जानहुँ स्वामी । सगुन अगुन उर अंतरजामी ॥
जो कोसलपति राजिव नयना । करउ सो राम हृदय मम अयना ॥

हे स्वामी! आपको जो सगुण, निर्गुण और अन्तर्यामी जानते हों, वे जाना करें, मेरे हृदयको तो कोसलपति कमलनयन श्रीरामजी ही अपना घर बनावें ॥ १० ॥

अस अभिमान जाइ जनि भोरे । मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
सुनि मुनि बचन राम मन भाए । बहुरि हरषि मुनिबर उर लाए ॥

ऐसा अभिमान भूलकर भी न छूटे कि मैं सेवक हूँ और श्रीरघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनिके वचन सुनकर श्रीरामजी मनमें बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्होंने हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनिको हृदयसे लगा लिया ॥ ११ ॥

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही । जो बर मागहु देउँ सो तोही ॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जाचा । समुझि न परइ झूठ का साचा ॥

[और कहा—] हे मुनि! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो, वही मैं तुम्हें दूँ! मुनि सुतीक्ष्णजीने कहा—मैंने तो वर कभी माँगा ही नहीं। मुझे समझ ही नहीं पड़ता कि क्या झूठ है और क्या सत्य है (क्या माँगूँ, क्या नहीं) ॥ १२ ॥

तुम्हहि नीक लागै रघुराई । सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना । होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥

[अतः] हे रघुनाथजी ! हे दासोंको सुख देनेवाले ! आपको जो अच्छा लगे, मुझे वही दीजिये । [श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे मुने!] तुम प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और समस्त गुणों तथा ज्ञानके निधान हो जाओ ॥ १३ ॥

प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा । अब सो देहु मोहि जो भावा ॥

[तब मुनि बोले—] प्रभुने जो वरदान दिया वह तो मैंने पा लिया । अब मुझे जो अच्छा लगता है वह दीजिये— ॥ १४ ॥

दो० — अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम ।

मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! हे श्रीरामजी ! छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित धनुष-बाणधारी आप निष्काम (स्थिर) होकर मेरे हृदयरूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति सदा निवास कीजिये ॥ ११ ॥

एवमस्तु करि रमानिवासा । हरषि चले कुंभज रिषि पासा ॥
बहुत दिवस गुरु दरसन पाएँ । भए मोहि एहिं आश्रम आएँ ॥

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) ऐसा उच्चारण कर लक्ष्मीनिवास श्रीरामचन्द्रजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषिके पास चले । [तब सुतीक्ष्णजी बोले—] गुरु अगस्त्यजीका दर्शन पाये और इस आश्रममें आये मुझे बहुत दिन हो गये ॥ १ ॥

अब प्रभु संग जाउँ गुरु पाहीं । तुम्ह कहँ नाथ निहोरा नाहीं ॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई । लिए संग बिहसे द्वौ भाई ॥

अब मैं भी प्रभु (आप) के साथ गुरुजीके पास चलता हूँ । इसमें हे नाथ ! आपपर मेरा कोई एहसान नहीं है । मुनिकी चतुरता देखकर कृपाके भण्डार श्रीरामजीने उनको साथ ले लिया और दोनों भाई हँसने लगे ॥ २ ॥

पंथ कहत निज भगति अनूपा । मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा ॥
तुरत सुतीछन गुरु पहिं गयऊ । करि दंडवत कहत अस भयऊ ॥

रास्तेमें अपनी अनुपम भक्तिका वर्णन करते हुए देवताओंके राजराजेश्वर श्रीरामजी अगस्त्य मुनिके आश्रमपर पहुँचे । सुतीक्ष्ण तुरंत ही गुरु अगस्त्यजीके पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे— ॥ ३ ॥

नाथ कोसलाधीस कुमारा । आए मिलन जगत आधारा ॥
राम अनुज समेत बैदेही । निसि दिनु देव जपत हहु जेही ॥

हे नाथ ! अयोध्याके राजा दशरथजीके कुमार जगदाधार श्रीरामचन्द्रजी छोटे भाई लक्ष्मणजी और सीताजीसहित आपसे मिलने आये हैं, जिनका हे देव ! आप रात-दिन जप करते रहते हैं ॥ ४ ॥

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए । हरि बिलोकि लोचन जल छाए ॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई । रिषि अति प्रीति लिए उर लाई ॥

यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरंत ही उठ दौड़े । भगवान्को देखते ही उनके नेत्रोंमें [आनन्द और प्रेमके आँसुओंका] जल भर आया । दोनों भाई मुनिके चरणकमलोंपर गिर पड़े । ऋषिने [उठाकर] बड़े प्रेमसे उन्हें हृदयसे लगा लिया ॥ ५ ॥

सादर कुसल पूछि मुनि ग्यानी । आसन बर बैठारे आनी ॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा । मोहि सम भाग्यवंत नहिं दूजा ॥

ज्ञानी मुनिने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उनको लाकर श्रेष्ठ आसनपर बैठाया । फिर बहुत प्रकारसे प्रभुकी पूजा करके कहा—मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा कोई नहीं है ॥ ६ ॥

जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा । हरषे सब बिलोकि सुखकंदा ॥

वहाँ जहाँतक (जितने भी) अन्य मुनिगण थे, सभी आनन्दकन्द श्रीरामजीके दर्शन करके हर्षित हो गये ॥ ७ ॥

दो०— मुनि समूह महँ बैठे सन्मुख सब की ओर ।

सरद इंदु तन चितवत मानहुँ निकर चकोर ॥ १२ ॥

मुनियोंके समूहमें श्रीरामचन्द्रजी सबकी ओर सम्मुख होकर बैठे हैं (अर्थात् प्रत्येक मुनिको श्रीरामजी अपने ही सामने मुख करके बैठे दिखायी देते हैं और सब मुनि टकटकी लगाये उनके मुखको देख रहे हैं) । ऐसा जान पड़ता है मानो चकोरोंका समुदाय शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी ओर देख रहा हो ॥ १२ ॥

तब रघुबीर कहा मुनि पाहीं । तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाहीं ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयउँ । ताते तात न कहि समुझायउँ ॥

तब श्रीरामजीने मुनिसे कहा—हे प्रभो ! आपसे तो कुछ छिपाव है नहीं । मैं जिस कारणसे आया हूँ वह आप जानते ही हैं । इसीसे हे तात ! मैंने आपसे समझाकर कुछ नहीं कहा ॥ १ ॥

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही । जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी । पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥

हे प्रभो ! अब आप मुझे वही मन्त्र (सलाह) दीजिये, जिस प्रकार मैं मुनियोंके द्रोही राक्षसोंको मारूँ । प्रभुकी वाणी सुनकर मुनि मुस्कराये और बोले—हे नाथ ! आपने क्या समझकर मुझसे यह प्रश्न किया है ? ॥ २ ॥

तुम्हरेइँ भजन प्रभाव अघारी । जानउँ महिमा कछुक तुम्हारी ॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्मांड अनेक निकाया ॥

हे पापोंका नाश करनेवाले ! मैं तो आपहीके भजनके प्रभावसे आपकी कुछ थोड़ी—

सी महिमा जानता हूँ। आपकी माया गूलरके विशाल वृक्षके समान है, अनेकों ब्रह्माण्डोंके समूह ही जिसके फल हैं ॥ ३ ॥

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना ॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भयँ डरत सदा सोउ काला ॥

चर और अचर जीव [गूलरके फलके भीतर रहनेवाले छोटे-छोटे] जन्तुओंके समान उन [ब्रह्माण्डरूपी फलों] के भीतर बसते हैं और वे [अपने उस छोटे-से जगत्के सिवा] दूसरा कुछ नहीं जानते। उन फलोंका भक्षण करनेवाला कठिन और कराल काल है। वह काल भी सदा आपसे भयभीत रहता है ॥ ४ ॥

ते तुम्ह सकल लोकपति साईं। पूँछेहु मोहि मनुज की नाईं ॥
यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता ॥

उन्हीं आपने समस्त लोकपालोंके स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्यकी तरह प्रश्न किया। हे कृपाके धाम! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि आप श्रीसीताजी और छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित मेरे हृदयमें [सदा] निवास कीजिये ॥ ५ ॥

अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा ॥
यद्यपि ब्रह्म अखंड अनंता। अनुभव गम्य भजहिं जेहि संता ॥

मुझे प्रगाढ़ भक्ति, वैराग्य, सत्संग और आपके चरणकमलोंमें अटूट प्रेम प्राप्त हो। यद्यपि आप अखण्ड और अनन्त ब्रह्म हैं, जो अनुभवसे ही जाननेमें आते हैं और जिनका संतजन भजन करते हैं; ॥ ६ ॥

अस तव रूप बखानउँ जानउँ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानउँ ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई ॥

यद्यपि मैं आपके ऐसे रूपको जानता हूँ और उसका वर्णन भी करता हूँ तो भी लौट-लौटकर मैं सगुण ब्रह्ममें (आपके इस सुन्दर स्वरूपमें) ही प्रेम मानता हूँ। आप सेवकोंको सदा ही बड़ाई दिया करते हैं, इसीसे हे रघुनाथजी! आपने मुझसे पूछा है ॥ ७ ॥

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू ॥

हे प्रभो! एक परम मनोहर और पवित्र स्थान है, उसका नाम पञ्चवटी है। हे प्रभो! आप दण्डकवनको [जहाँ पञ्चवटी है] पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि गौतमजीके कठोर शापको हर लीजिये ॥ ८ ॥

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया ॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पंचबटी निअराई ॥

हे रघुकुलके स्वामी! आप सब मुनियोंपर दया करके वहीं निवास कीजिये। मुनिकी आज्ञा पाकर श्रीरामचन्द्रजी वहाँसे चल दिये और शीघ्र ही पञ्चवटीके निकट पहुँच गये ॥ ९ ॥

दो०— गीधराज सैं भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बड़ाइ।

गोदावरी निकट प्रभु रहे परन गृह छाड़ ॥ १३ ॥

वहाँ गृधराज जटायुसे भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकारसे प्रेम बढ़ाकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी गोदावरीजीके समीप पर्णकुटी छाकर रहने लगे ॥ १३ ॥

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भए मुनि बीती त्रासा ॥
गिरि बन नदीं ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए ॥

जबसे श्रीरामजीने वहाँ निवास किया तबसे मुनि सुखी हो गये, उनका डर जाता रहा। पर्वत, वन, नदी और तालाब शोभासे छा गये। वे दिनोंदिन अधिक सुहावने [मालूम] होने लगे ॥ १ ॥

खग मृग बृंद अनंदित रहहीं। मधुप मधुर गुंजत छबि लहहीं ॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुबीर बिराजा ॥

पक्षी और पशुओंके समूह आनन्दित रहते हैं और भौरे मधुर गुंजार करते हुए शोभा पा रहे हैं। जहाँ प्रत्यक्ष श्रीरामजी विराजमान हैं, उस वनका वर्णन सर्पराज शेषजी भी नहीं कर सकते ॥ २ ॥

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं। मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥

एक बार प्रभु श्रीरामजी सुखसे बैठे हुए थे। उस समय लक्ष्मणजीने उनसे छलरहित (सरल) वचन कहे—हे देवता, मनुष्य, मुनि और चराचरके स्वामी! मैं अपने प्रभुकी तरह (अपना स्वामी समझकर) आपसे पूछता हूँ ॥ ३ ॥

मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान बिराग अरु माया। कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया ॥

हे देव! मुझे समझाकर वही कहिये, जिससे सब छोड़कर मैं आपकी चरणरजकी ही सेवा करूँ। ज्ञान, वैराग्य और मायाका वर्णन कीजिये; और उस भक्तिको कहिये जिसके कारण आप दया करते हैं ॥ ४ ॥

दो०— ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।

जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥ १४ ॥

हे प्रभो! ईश्वर और जीवका भेद भी सब समझाकर कहिये, जिससे आपके चरणोंमें मेरी प्रीति हो और शोक, मोह तथा भ्रम नष्ट हो जायँ ॥ १४ ॥

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई ॥
मैं अरु मोर तोर तैं माया। जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे तात! मैं थोड़ेहीमें सब समझाकर कहे देता हूँ। तुम

मन, चित्त और बुद्धि लगाकर सुनो। मैं और मेरा, तू और तेरा—यही माया है, जिसने समस्त जीवोंको वशमें कर रखा है ॥ १ ॥

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई ॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥

इन्द्रियोंके विषयोंको और जहाँतक मन जाता है, हे भाई! उस सबको माया जानना। उसके भी—एक विद्या और दूसरी अविद्या, इन दोनों भेदोंको तुम सुनो— ॥ २ ॥

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके ॥

एक (अविद्या) दुष्ट (दोषयुक्त) है और अत्यन्त दुःखरूप है जिसके वश होकर जीव संसाररूपी कुएँमें पड़ा हुआ है। और एक (विद्या) जिसके वशमें गुण है और जो जगत्की रचना करती है, वह प्रभुसे ही प्रेरित होती है, उसके अपना बल कुछ भी नहीं है ॥ ३ ॥

ग्यान मान जहँ एकउ नाही। देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी। तून सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥

ज्ञान वह है जहाँ (जिसमें) मान आदि एक भी [दोष] नहीं है और जो सबमें समानरूपसे ब्रह्मको देखता है। हे तात! उसीको परम वैराग्यवान् कहना चाहिये जो सारी सिद्धियोंको और तीनों गुणोंको तिनकेके समान त्याग चुका हो ॥ ४ ॥

[जिसमें मान, दम्भ, हिंसा, क्षमाराहित्य, टेढ़ापन, आचार्यसेवाका अभाव, अपवित्रता, अस्थिरता, मनका निगृहीत न होना, इन्द्रियोंके विषयमें आसक्ति, अहंकार, जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिमय जगत्में सुखबुद्धि, स्त्री-पुत्र-घर आदिमें आसक्ति तथा ममता, इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें हर्ष-शोक, भक्तिका अभाव, एकान्तमें मन न लगना, विषयी मनुष्योंके संगमें प्रेम—ये अठारह न हों और नित्य अध्यात्म (आत्मा) में स्थिति तथा तत्त्वज्ञानके अर्थ (तत्त्वज्ञानके द्वारा जाननेयोग्य) परमात्माका नित्य दर्शन हो, वही ज्ञान कहलाता है। देखिये गीता अध्याय १३। ७ से ११]

दो०— माया ईस न आपु कहँ जान कहिअ सो जीव।

बंध मोच्छ प्रद सर्वपर माया प्रेरक सीव ॥ १५ ॥

जो मायाको, ईश्वरको और अपने स्वरूपको नहीं जानता, उसे जीव कहना चाहिये। जो [कर्मानुसार] बन्धन और मोक्ष देनेवाला, सबसे परे और मायाका प्रेरक है वह ईश्वर है ॥ १५ ॥

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद वेद बखाना ॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥

धर्म (के आचरण) से वैराग्य और योगसे ज्ञान होता है तथा ज्ञान मोक्षका देनेवाला है—ऐसा वेदोंने वर्णन किया है। और हे भाई! जिससे मैं शीघ्र ही प्रसन्न

होता हूँ, वह मेरी भक्ति है जो भक्तोंको सुख देनेवाली है ॥ १ ॥

सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला । मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥

वह भक्ति स्वतन्त्र है, उसको (ज्ञान-विज्ञान आदि किसी) दूसरे साधनका सहारा (अपेक्षा) नहीं है । ज्ञान और विज्ञान तो उसके अधीन हैं । हे तात ! भक्ति अनुपम एवं सुखकी मूल है; और वह तभी मिलती है जब संत अनुकूल (प्रसन्न) होते हैं ॥ २ ॥

भगति कि साधन कहउँ बखानी । सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती । निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥

अब मैं भक्तिके साधन विस्तारसे कहता हूँ—यह सुगम मार्ग है, जिससे जीव मुझको सहज ही पा जाते हैं । पहले तो ब्राह्मणोंके चरणोंमें अत्यन्त प्रीति हो और वेदकी रीतिके अनुसार अपने-अपने [वर्णाश्रमके] कर्मोंमें लगा रहे ॥ ३ ॥

एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा । तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं । मम लीला रति अति मन माहीं ॥

इसका फल, फिर विषयोंसे वैराग्य होगा । तब (वैराग्य होनेपर) मेरे धर्म (भागवतधर्म) में प्रेम उत्पन्न होगा । तब श्रवण आदि नौ प्रकारकी भक्तियाँ दृढ़ होंगी और मनमें मेरी लीलाओंके प्रति अत्यन्त प्रेम होगा ॥ ४ ॥

संत चरन पंकज अति प्रेमा । मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा । सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥

जिसका संतोंके चरणकमलोंमें अत्यन्त प्रेम हो; मन, वचन और कर्मसे भजनका दृढ़ नियम हो और जो मुझको ही गुरु, पिता, माता, भाई, पति और देवता सब कुछ जाने और सेवामें दृढ़ हो; ॥ ५ ॥

मम गुण गावत पुलक सरीरा । गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें । तात निरंतर बस मैं ताकें ॥

मेरा गुण गाते समय जिसका शरीर पुलकित हो जाय, बाणी गद्गद हो जाय और नेत्रोंसे [प्रेमाश्रुओंका] जल बहने लगे और काम, मद और दम्भ आदि जिसमें न हों, हे भाई ! मैं सदा उसके वशमें रहता हूँ ॥ ६ ॥

दो० — बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम ।

तिन्ह के हृदय कमल महँ करउँ सदा विश्राम ॥ १६ ॥

जिनको कर्म, वचन और मनसे मेरी ही गति है; और जो निष्काम भावसे मेरा भजन करते हैं, उनके हृदय-कमलमें मैं सदा विश्राम किया करता हूँ ॥ १६ ॥

भगति जोग सुनि अति सुख पावा । लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ॥
एहि बिधि गए कछुक दिन बीती । कहत बिराग ग्यान गुन नीती ॥

इस भक्तियोगको सुनकर लक्ष्मणजीने अत्यन्त सुख पाया और उन्होंने प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें सिर नवाया। इस प्रकार वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये ॥ १ ॥

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ॥
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥

शूर्पणखा नामक रावणकी एक बहिन थी, जो नागिनके समान भयानक और दुष्ट हृदयकी थी। वह एक बार पञ्चवटीमें गयी और दोनों राजकुमारोंको देखकर विकल (कामसे पीड़ित) हो गयी ॥ २ ॥

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रबिमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥

(काकभुशुण्डिजी कहते हैं—) हे गरुड़जी! (शूर्पणखा—जैसी राक्षसी, धर्मज्ञानशून्य कामान्ध) स्त्री मनोहर पुरुषको देखकर, चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही हो, विकल हो जाती है और मनको नहीं रोक सकती। जैसे सूर्यकान्तमणि सूर्यको देखकर द्रवित हो जाती है (ज्वालासे पिघल जाती है) ॥ ३ ॥

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥

वह सुन्दर रूप धरकर प्रभुके पास जाकर और बहुत मुसकराकर वचन बोली— न तो तुम्हारे समान कोई पुरुष है, न मेरे समान स्त्री! विधाताने यह संयोग (जोड़ा) बहुत विचारकर रचा है ॥ ४ ॥

मम अनुरूप पुरुष जग माहीं। देखेउँ खोजि लोक तिहु नाहीं ॥
तातेँ अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥

मेरे योग्य पुरुष (वर) जगत्भरमें नहीं है, मैंने तीनों लोकोंको खोज देखा। इसीसे मैं अबतक कुमारी (अविवाहित) रही। अब तुमको देखकर कुछ मन माना (चित्त ठहरा) है ॥ ५ ॥

सीतहि चितइ कही प्रभु बाता। अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी ॥

सीताजीकी ओर देखकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुमार है। तब वह लक्ष्मणजीके पास गयी। लक्ष्मणजी उसे शत्रुकी बहिन समझकर और प्रभुकी ओर देखकर कोमल वाणीसे बोले— ॥ ६ ॥

सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा ॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहि सब छाजा ॥

हे सुन्दरी! सुन, मैं तो उनका दास हूँ। मैं पराधीन हूँ, अतः तुम्हें सुभीता (सुख) न होगा। प्रभु समर्थ हैं, कोसलपुरके राजा हैं, वे जो कुछ करें, उन्हें सब फवता है ॥ ७ ॥

सेवक सुख चह मान भिखारी । व्यसनी धन सुभ गति बिभिचारी ॥
लोभी जसु चह चार गुमानी । नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी ॥

सेवक सुख चाहे, भिखारी सम्मान चाहे, व्यसनी (जिसे जूए, शराब आदिका व्यसन हो) धन और व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे और अभिमानी चारों फल—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चाहे, तो ये सब प्राणी आकाशको दुहकर दूध लेना चाहते हैं (अर्थात् असम्भव बातको सम्भव करना चाहते हैं) ॥ ८ ॥

पुनि फिरि राम निकट सो आई । प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई । जो तृण तोरि लाज परिहरई ॥

वह लौटकर फिर श्रीरामजीके पास आयी । प्रभुने फिर उसे लक्ष्मणजीके पास भेज दिया । लक्ष्मणजीने कहा—तुम्हें वही बरेगा जो लज्जाको तृण तोड़कर (अर्थात् प्रतिज्ञा करके) त्याग देगा (अर्थात् जो निपट निर्लज्ज होगा) ॥ ९ ॥

तब खिसिआनि राम पहिं गई । रूप भयंकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई । कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥

तब वह खिसियायी हुई (क्रुद्ध होकर) श्रीरामजीके पास गयी और उसने अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया । सीताजीको भयभीत देखकर श्रीरघुनाथजीने लक्ष्मणजीको इशारा देकर कहा ॥ १० ॥

दो०— लछिमन अति लाघवँ सो नाक कान बिनु कीन्हि ।

ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्हि ॥ १७ ॥

लक्ष्मणजीने बड़ी फुर्तीसे उसको बिना नाक-कानकी कर दिया । मानो उसके हाथ रावणको चुनौती दी हो ! ॥ १७ ॥

नाक कान बिनु भइ बिकरारा । जनु स्रव सैल गेरु कै धारा ॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता । धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता ॥

बिना नाक-कानके वह विकराल हो गयी । [उसके शरीरसे रक्त इस प्रकार बहने लगा] मानो [काले] पर्वतसे गेरुकी धारा बह रही हो । वह विलाप करती हुई खर-दूषणके पास गयी । [और बोली—] हे भाई ! तुम्हारे पौरुष (वीरता) को धिक्कार है, तुम्हारे बलको धिक्कार है ॥ १ ॥

तेहिं पूछा सब कहेसि बुझाई । जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
धाए निसिचर निकर बरूथा । जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥

उन्होंने पूछा, तब शूर्पणखाने सब समझाकर कहा । सब सुनकर राक्षसोंने सेना तैयार की । राक्षस-समूह झुंड-के-झुंड दौड़े । मानो पंखधारी काजलके पर्वतोंका झुंड हो ॥ २ ॥

नाना बाहन नानाकारा । नानायुध धर घोर अपारा ॥
सूपनखा आगें करि लीनी । असुभ रूप श्रुति नासा हीनी ॥

वे अनेकों प्रकारकी सवारियोंपर चढ़े हुए तथा अनेकों आकार (सूरतों) के हैं। वे अपार हैं और अनेकों प्रकारके असंख्य भयानक हथियार धारण किये हुए हैं। उन्होंने नाक-कान कटी हुई अमङ्गलरूपिणी शूर्पणखाको आगे कर लिया ॥ ३ ॥

असगुन अमित होहिं भयकारी । गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी ॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाहीं । देखि कटकु भट अति हरषाहीं ॥

अनगिनत भयङ्कर अशकुन हो रहे हैं। परन्तु मृत्युके वश होनेके कारण वे सब-के-सब उनको कुछ गिनते ही नहीं। गरजते हैं, ललकारते हैं और आकाशमें उड़ते हैं। सेना देखकर योद्धालोग बहुत ही हर्षित होते हैं ॥ ४ ॥

कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई । धरि मारहु तिय लेहु छड़ाई ॥
धूरि पूरि नभ मंडल रहा । राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥

कोई कहता है दोनों भाइयोंको जीता ही पकड़ लो, पकड़कर मार डालो और स्त्रीको छीन लो। आकाशमण्डल धूलसे भर गया। तब श्रीरामजीने लक्ष्मणजीको बुलाकर उनसे कहा— ॥ ५ ॥

लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर । आवा निसिचर कटकु भयंकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी । चले सहित श्री सर धनु पानी ॥

राक्षसोंकी भयानक सेना आ गयी है। जानकीजीको लेकर तुम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ। सावधान रहना। प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर लक्ष्मणजी हाथमें धनुष-बाण लिये श्रीसीताजीसहित चले ॥ ६ ॥

देखि राम रिपुदल चलि आवा । बिहसि कठिन कोदंड चढ़ावा ॥

शत्रुओंकी सेना [समीप] चली आयी है, यह देखकर श्रीरामजीने हँसकर कठिन धनुषको चढ़ाया ॥ ७ ॥

छं० — कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बाँधत सोह क्यो ।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यो ॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै ।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ॥

कठिन धनुष चढ़ाकर सिरपर जटाका जूड़ा बाँधते हुए प्रभु कैसे शोभित हो रहे हैं, जैसे मरकतमणि (पन्ने) के पर्वतपर करोड़ों बिजलियोंसे दो साँप लड़ रहे हों। कमरमें तरकस कसकर, विशाल भुजाओंमें धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्रीरामचन्द्रजी राक्षसोंकी ओर देख रहे हैं। मानो मतवाले हाथियोंके समूहको [आता] देखकर सिंह [उनकी ओर] ताक रहा हो।

सो० — आइ गए बगमेल धरहु धरहु धावत सुभट ।
जथा बिलोकि अकेल बाल रबिहि घेरत दनुज ॥ १८ ॥

'पकड़ो-पकड़ो' पुकारते हुए राक्षस योद्धा बाग छोड़कर (बड़ी तेजीसे) दौड़े हुए आये [और उन्होंने श्रीरामजीको चारों ओरसे घेर लिया], जैसे बालसूर्य (उदयकालीन सूर्य) को अकेला देखकर मन्देह नामक दैत्य घेर लेते हैं ॥ १८ ॥

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी । थकित भई रजनीचर धारी ॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन । यह कोउ नृपबालक नर भूषन ॥

[सौन्दर्य-माधुर्यनिधि] प्रभु श्रीरामजीको देखकर राक्षसोंकी सेना थकित रह गयी। वे उनपर बाण नहीं छोड़ सके। मन्त्रीको बुलाकर खर-दूषणने कहा—यह राजकुमार कोई मनुष्योंका भूषण है ॥ १ ॥

नाग असुर सुर नर मुनि जेते । देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखी नहिं असि सुंदरताई ॥

जितने भी नाग, असुर, देवता, मनुष्य और मुनि हैं, उनमेंसे हमने न जाने कितने ही देखे, जीते और मार डाले हैं। पर हे सब भाइयो! सुनो, हमने जन्मभरमें ऐसी सुन्दरता कहीं नहीं देखी ॥ २ ॥

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा । बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥
देहु तुरत निज नारि दुराई । जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥

यद्यपि इन्होंने हमारी बहिनको कुरूप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं हैं। 'छिपायी हुई अपनी स्त्री हमें तुरंत दे दो और दोनों भाई जीते-जी घर लौट जाओ' ॥ ३ ॥

मोर कहा तुम्ह ताहि सुनावहु । तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई । सुनत राम बोले मुसुकाई ॥

मेरा यह कथन तुमलोग उसे सुनाओ और उसका वचन (उत्तर) सुनकर शीघ्र आओ। दूतोंने जाकर यह सन्देश श्रीरामचन्द्रजीसे कहा। उसे सुनते ही श्रीरामचन्द्रजी मुसकराकर बोले— ॥ ४ ॥

हम छत्री मृगया बन करहीं । तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं ॥
रिपु बलवंत देखि नहिं डरहीं । एक बार कालहु सन लरहीं ॥

हम क्षत्रिय हैं, वनमें शिकार करते हैं और तुम्हारे-सरीखे दुष्ट पशुओंको तो ढूँढ़ते ही फिरते हैं। हम बलवान् शत्रुको देखकर नहीं डरते। [लड़नेको आवे तो] एक बार तो हम कालसे भी लड़ सकते हैं ॥ ५ ॥

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक । मुनि पालक खल सालक बालक ॥
जाँ न होइ बल घर फिरि जाहू । समर बिमुख मैं हतउँ न काहू ॥

यद्यपि हम मनुष्य हैं, परन्तु दैत्यकुलका नाश करनेवाले और मुनियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, हम बालक हैं, परन्तु हैं दुष्टोंको दण्ड देनेवाले। यदि बल न हो तो घर लौट जाओ। संग्राममें पीठ दिखानेवाले किसीको मैं नहीं मारता ॥ ६ ॥

रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई । रिपु पर कृपा परम कदराई ॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ । सुनि खर दूषन उर अति दहेऊ ॥

रणमें चढ़ आकर कपट-चतुराई करना और शत्रुपर कृपा करना (दया दिखाना) तो बड़ी भारी कायरता है। दूतोंने लौटकर तुरंत सब बातें कहीं, जिन्हें सुनकर खर-दूषणका हृदय अत्यन्त जल उठा ॥ ७ ॥

छं० — उर दहेउ कहेउ कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा ।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा ॥
प्रभु कीन्हि धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा ।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा ॥

[खर-दूषणका] हृदय जल उठा। तब उन्होंने कहा—पकड़ लो (कैद कर लो)। [यह सुनकर] भयानक राक्षस योद्धा बाण, धनुष, तोमर, शक्ति (साँग), शूल (बरछी), कृपाण (कटार), परिघ और फरसा धारण किये हुए दौड़ पड़े। प्रभु श्रीरामजीने पहले धनुषका बड़ा कठोर, घोर और भयानक टङ्कार किया, जिसे सुनकर राक्षस बहरे और व्याकुल हो गये। उस समय उन्हें कुछ भी होश न रहा।

दो० — सावधान होइ धाए जानि सबल आराति ।

लागे बरषन राम पर अस्त्र सस्त्र बहुभाँति ॥ १९ (क) ॥

फिर वे शत्रुको बलवान् जानकर सावधान होकर दौड़े और श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर बहुत प्रकारके अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगे ॥ १९ (क) ॥

तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर ।

तानि सरासन श्रवन लागि पुनि छाँड़े निज तीर ॥ १९ (ख) ॥

श्रीरघुवीरजीने उनके हथियारोंको तिलके समान (टुकड़े-टुकड़े) करके काट डाला। फिर धनुषको कानतक तानकर अपने तीर छोड़े ॥ १९ (ख) ॥

छं० — तब चले बान कराल । फुंकरत जनु बहु ब्याल ॥
कोपेउ समर श्रीराम । चले बिसिख निसित निकाम ॥

तब भयानक बाण ऐसे चले, मानो फुफकारते हुए बहुत-से सर्प जा रहे हैं। श्रीरामचन्द्रजी संग्राममें क्रुद्ध हुए और अत्यन्त तीक्ष्ण बाण चले ॥ १ ॥

अवलोकि खरतर तीर । मुरि चले निसिचर बीर ॥

भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ । जो भागि रन ते जाइ ॥

अत्यन्त तीक्ष्ण बाणोंको देखकर राक्षस वीर पीठ दिखाकर भाग चले। तब खर, दूषण और त्रिशिरा तीनों भाई क्रुद्ध होकर बोले—जो रणसे भागकर जायगा, ॥ २ ॥

तेहि बधब हम निज पानि । फिरे मरन मन महुँ ठानि ॥
आयुध अनेक प्रकार । सनमुख ते करहिं प्रहार ॥

उसका हम अपने हाथों वध करेंगे । तब मनमें मरना ठानकर भागते हुए राक्षस लौट पड़े और सामने होकर वे अनेकों प्रकारके हथियारोंसे श्रीरामजीपर प्रहार करने लगे ॥ ३ ॥

रिपु परम कोपे जानि । प्रभु धनुष सर संधानि ॥
छाँड़े बिपुल नाराच । लगे कटन बिकट पिसाच ॥

शत्रुको अत्यन्त कुपित जानकर प्रभुने धनुषपर बाण चढ़ाकर बहुत-से बाण छोड़े, जिनसे भयानक राक्षस कटने लगे ॥ ४ ॥

उर सीस भुज कर चरन । जहँ तहँ लगे महि परन ॥
चिक्करत लागत बान । धर परत कुधर समान ॥

उनकी छाती, सिर, भुजा, हाथ और पैर जहाँ-तहाँ पृथ्वीपर गिरने लगे । बाण लगते ही वे हाथीकी तरह चिग्घाड़ते हैं । उनके पहाड़के समान धड़ कट-कटकर गिर रहे हैं ॥ ५ ॥

भट कटत तन सत खंड । पुनि उठत करि पाषंड ॥
नभ उड़त बहु भुज मुंड । बिनु मौलि धावत रुंड ॥

योद्धाओंके शरीर कटकर सैकड़ों टुकड़े हो जाते हैं । वे फिर माया करके उठ खड़े होते हैं । आकाशमें बहुत-सी भुजाएँ और सिर उड़ रहे हैं तथा बिना सिरके धड़ दौड़ रहे हैं ॥ ६ ॥

खग कंक काक सृगाल । कटकटहिं कठिन कराल ॥

चील [या क्रौंच], कौए आदि पक्षी और सियार कठोर और भयङ्कर कट-कट शब्द कर रहे हैं ॥ ७ ॥

छं०— कटकटहिं जंबुक भूत प्रेत पिसाच खर्पर संचहीं ।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नंचहीं ॥
रघुबीर बान प्रचंड खंडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा ।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धर धरु धरु करहिं भयकर गिरा ॥

सियार कटकटाते हैं, भूत, प्रेत और पिशाच खोपड़ियाँ बटोर रहे हैं [अथवा खप्पर भर रहे हैं] । वीर-वैताल खोपड़ियोंपर ताल दे रहे हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं । श्रीरघुवीरके प्रचण्ड बाण योद्धाओंके वक्षःस्थल, भुजा और सिरोंके टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं । उनके धड़ जहाँ-तहाँ गिर पड़ते हैं । फिर उठते और लड़ते हैं और 'पकड़ो-पकड़ो' का भयङ्कर शब्द करते हैं ॥ १ ॥

अंतावरीं गहि उड़त गीध पिशाच कर गहि धावहीं ।
 संग्राम पुर बासी मनहुँ बहु बाल गुड़ी उड़ावहीं ॥
 मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे ।
 अवलोकि निज दल बिकल भट तिसिरादि खर दूषन फिरे ॥

अँतड़ियोंके एक छोरको पकड़कर गीध उड़ते हैं और उन्हींका दूसरा छोर हाथसे पकड़कर पिशाच दौड़ते हैं, ऐसा मालूम होता है, मानो संग्रामरूपी नगरके निवासी बहुत-से बालक पतंग उड़ा रहे हों। अनेकों योद्धा मारे और पछाड़े गये। बहुत-से, जिनके हृदय विदीर्ण हो गये हैं, पड़े कराह रहे हैं। अपनी सेनाको व्याकुल देखकर त्रिशिरा और खर-दूषण आदि योद्धा श्रीरामजीकी ओर मुड़े ॥ २ ॥

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारहीं ।
 करि कोप श्रीरघुबीर पर अगनित निसाचर डारहीं ॥
 प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका ।
 दस दस बिसिख उर माझ मारे सकल निसिचर नायका ॥

अनगिनत राक्षस क्रोध करके बाण, शक्ति, तोमर, फरसा, शूल और कृपाण एक ही बारमें श्रीरघुवीरपर छोड़ने लगे। प्रभुने पलभरमें शत्रुओंके बाणोंको काटकर, ललकारकर उनपर अपने बाण छोड़े। सब राक्षस-सेनापतियोंके हृदयमें दस-दस बाण मारे ॥ ३ ॥

महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी ।
 सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ॥
 सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक कर्यो ।
 देखहिं परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्यो ॥

योद्धा पृथ्वीपर गिर पड़ते हैं, फिर उठकर भिड़ते हैं। मरते नहीं, बहुत प्रकारकी अतिशय माया रचते हैं। देवता यह देखकर डरते हैं कि प्रेत (राक्षस) चौदह हजार हैं और अयोध्यानाथ श्रीरामजी अकेले हैं। देवता और मुनियोंको भयभीत देखकर मायाके स्वामी प्रभुने एक बड़ा कौतुक किया, जिससे शत्रुओंकी सेना एक दूसरेको रामरूप देखने लगी और आपसमें ही युद्ध करके लड़ मरी ॥ ४ ॥

दो० — राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्बान ।

करि उपाय रिपु मारे छन महुँ कृपानिधान ॥ २० (क) ॥

सब ['यही राम है, इसे मारो' इस प्रकार] राम-राम कहकर शरीर छोड़ते हैं और निर्वाण (मोक्ष) पद पाते हैं। कृपानिधान श्रीरामजीने यह उपाय करके क्षणभरमें शत्रुओंको मार डाला ॥ २० (क) ॥

हरषित बरषहिं सुमन सुर बाजहिं गगन निसान ।

अस्तुति करि करि सब चले सोभित बिबिध बिमान ॥ २० (ख) ॥

देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं, आकाशमें नगाड़े बज रहे हैं। फिर वे सब स्तुति कर-करके अनेकों विमानोंपर सुशोभित हुए चले गये ॥ २० (ख) ॥

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते ॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥

जब श्रीरघुनाथजीने युद्धमें शत्रुओंको जीत लिया तथा देवता, मनुष्य और मुनि सबके भय नष्ट हो गये, तब लक्ष्मणजी सीताजीको ले आये। चरणोंमें पड़ते हुए उनको प्रभुने प्रसन्नतापूर्वक उठाकर हृदयसे लगा लिया ॥ १ ॥

सीता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता ॥
पंचबटीं बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥

सीताजी श्रीरामजीके श्याम और कोमल शरीरको परम प्रेमके साथ देख रही हैं, नेत्र अघाते नहीं हैं। इस प्रकार पञ्चवटीमें बसकर श्रीरघुनाथजी देवताओं और मुनियोंको सुख देनेवाले चरित्र करने लगे ॥ २ ॥

धुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखाँ रावन प्रेरा ॥
बोली बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी ॥

खर-दूषणका विध्वंस देखकर शूर्पणखाने जाकर रावणको भड़काया। वह बड़ा क्रोध करके वचन बोली—तूने देश और खजानेकी सुधि ही भुला दी ॥ ३ ॥

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किऐँ अरु पाएँ ॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान तें लाजा ॥

शराब पी लेता है और दिन-रात पड़ा सोता रहता है। तुझे खबर नहीं है कि शत्रु तेरे सिरपर खड़ा है? नीतिके बिना राज्य और धर्मके बिना धन प्राप्त करनेसे, भगवान्को समर्पण किये बिना उत्तम कर्म करनेसे और विवेक उत्पन्न किये बिना विद्या पढ़नेसे परिणाममें श्रम ही हाथ लगता है। विषयोंके सङ्गसे संन्यासी, बुरी सलाहसे राजा, मानसे ज्ञान, मदिरापानसे लज्जा, ॥ ४-५ ॥

प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी ॥

नम्रताके बिना (नम्रता न होनेसे) प्रीति और मद (अहङ्कार) से गुणवान् शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं, इस प्रकार नीति मैंने सुनी है ॥ ६ ॥

सो० — रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।

अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन ॥ २१ (क) ॥

शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, स्वामी और सर्पको छोटा करके नहीं समझना चाहिये।
ऐसा कहकर शूर्पणखा अनेक प्रकारसे विलाप करके रोने लगी ॥ २१ (क) ॥

दो०—सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ ।

तोहि जिअत दसकंधर मोरि कि असि गति होइ ॥ २१ (ख) ॥

[रावणकी] सभाके बीच वह व्याकुल होकर पड़ी हुई बहुत प्रकारसे रो-रोकर
कह रही है कि अरे दशग्रीव! तेरे जीते-जी मेरी क्या ऐसी दशा होनी
चाहिये? ॥ २१ (ख) ॥

सुनत सभासद उठे अकुलाई । समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता । केइँ तव नासा कान निपाता ॥

शूर्पणखाके वचन सुनते ही सभासद् अकुला उठे। उन्होंने शूर्पणखाकी बाँह
पकड़कर उसे उठाया और समझाया। लङ्कापति रावणने कहा—अपनी बात तो बता,
किसने तेरे नाक-कान काट लिये? ॥ १ ॥

अवध नृपति दसरथ के जाए । पुरुष सिंघ बन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी । रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥

[वह बोली—] अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र, जो पुरुषोंमें सिंहके समान हैं,
वनमें शिकार खेलने आये हैं। मुझे उनकी करनी ऐसी समझ पड़ी है कि वे पृथ्वीको
राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ २ ॥

जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन । अभय भए बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना । परम धीर धन्वी गुन नाना ॥

जिनकी भुजाओंका बल पाकर हे दशमुख! मुनिलोग वनमें निर्भय होकर विचरने
लगे हैं। वे देखनेमें तो बालक हैं, पर हैं कालके समान। वे परम धीर, श्रेष्ठ धनुर्धर
और अनेकों गुणोंसे युक्त हैं ॥ ३ ॥

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता । खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा । तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥

दोनों भाइयोंका बल और प्रताप अतुलनीय है। वे दुष्टोंके वध करनेमें लगे हैं
और देवता तथा मुनियोंको सुख देनेवाले हैं। वे शोभाके धाम हैं, 'राम' ऐसा उनका
नाम है। उनके साथ एक तरुणी सुन्दरी स्त्री है ॥ ४ ॥

रूप रासि बिधि नारि सँवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा । सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥

विधाताने उस स्त्रीको ऐसी रूपकी राशि बनाया है कि सौ करोड़ रति
(कामदेवकी स्त्री) उसपर निछावर हैं। उन्हींके छोटे भाईने मेरे नाक-कान काट डाले।
मैं तेरी बहिन हूँ, यह सुनकर वे मेरी हँसी करने लगे ॥ ५ ॥

खर दूषण सुनि लगे पुकारा । छन महँ सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर दूषण तिसिरा कर घाता । सुनि दससीस जरे सब गाता ॥

मेरी पुकार सुनकर खर-दूषण सहायता करने आये । पर उन्होंने क्षणभरमें सारी सेनाको मार डाला । खर-दूषण और त्रिशिराका वध सुनकर रावणके सारे अङ्ग जल उठे ॥ ६ ॥

दो०— सूपन्नखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति ।

गयउ भवन अति सोचबस नीद परइ नहिं राति ॥ २२ ॥

उसने शूर्पणखाको समझाकर बहुत प्रकारसे अपने बलका बखान किया, किन्तु [मनमें] वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महलमें गया, उसे रातभर नींद नहीं पड़ी ॥ २२ ॥

सुर नर असुर नाग खग माहीं । मोरे अनुचर कहँ कोउ नाहीं ॥
खर दूषण मोहि सम बलवंता । तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥

[वह मन-ही-मन विचार करने लगा—] देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियोंमें कोई ऐसा नहीं जो मेरे सेवकको भी पा सके । खर-दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे । उन्हें भगवान्के सिवा और कौन मार सकता है ? ॥ १ ॥

सुर रंजन भंजन महि भारा । जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊँ । प्रभु सर प्राण तजें भव तरऊँ ॥

देवताओंको आनन्द देनेवाले और पृथ्वीका भार हरण करनेवाले भगवान्ने ही यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वैर करूँगा और प्रभुके बाण [के आघात] से प्राण छोड़कर भवसागरसे तर जाऊँगा ॥ २ ॥

होइहि भजनु न तामस देहा । मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥

इस तामस शरीरसे भजन तो होगा नहीं; अतएव मन, वचन और कर्मसे यही दृढ़ निश्चय है । और यदि वे मनुष्यरूप कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनोंको रणमें जीतकर उनकी स्त्रीको हर लूँगा ॥ ३ ॥

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ । बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥
इहाँ राम जसि जुगुति बनाई । सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥

[यों विचारकर] रावण रथपर चढ़कर अकेला ही वहाँ चला, जहाँ समुद्रके तटपर मारीच रहता था । [शिवजी कहते हैं कि—] हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजीने जैसी युक्ति रची, वह सुन्दर कथा सुनो ॥ ४ ॥

दो०— लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद ।

जनकसुता सन बोले बिहसि कृपा सुख बृंद ॥ २३ ॥

लक्ष्मणजी जब कन्द-मूल-फल लेनेके लिये वनमें गये, तब [अकेलेमें] कृपा

और सुखके समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजीसे बोले— ॥ २३ ॥

सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला । मैं कछु करबि ललित नरलीला ॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा । जौ लागि करौं निसाचर नासा ॥

हे प्रिये! हे सुन्दर पातिव्रत-धर्मका पालन करनेवाली सुशीले! सुनो! मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य-लीला करूँगा। इसलिये जबतक मैं राक्षसोंका नाश करूँ, तबतक तुम अग्रिमें निवास करो ॥ १ ॥

जबहिं राम सब कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसइ सील रूप सुबिनीता ॥

श्रीरामजीने ज्यों ही सब समझाकर कहा, त्यों ही श्रीसीताजी प्रभुके चरणोंको हृदयमें धरकर अग्रिमें समा गयीं। सीताजीने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी, जो उनके-जैसे ही शील-स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी ॥ २ ॥

लछिमनहुँ यह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ॥
दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥

भगवान्ने जो कुछ लीला रची, इस रहस्यको लक्ष्मणजीने भी नहीं जाना। स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया ॥ ३ ॥

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अंकुस धनु उरग बिलाई ॥
भयदायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥

नीचका झुकना (नम्रता) भी अत्यन्त दुःखदायी होता है। जैसे अङ्कुश, धनुष, साँप और बिल्लीका झुकना। हे भवानी! दुष्टकी मीठी वाणी भी [उसी प्रकार] भय देनेवाली होती है, जैसे बिना ऋतुके फूल! ॥ ४ ॥

दो०— करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात ।

कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात ॥ २४ ॥

तब मारीचने उसकी पूजा करके आदरपूर्वक बात पूछी—हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अकेले आये हैं? ॥ २४ ॥

दसमुख सकल कथा तेहि आगें । कही सहित अभिमान अभागें ॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी । जेहि बिधि हरि आनों नृपनारी ॥

भाग्यहीन रावणने सारी कथा अभिमानसहित उसके सामने कही [और फिर कहा—] तुम छल करनेवाले कपट-मृग बनो, जिस उपायसे मैं उस राजवधूको हर लाऊँ ॥ १ ॥

तेहिं पुनि कहा सुनहु दससीसा । ते नररूप चराचर ईसा ॥
तासों तात बयरु नहिं कीजै । मारें मरिअ जिआएँ जीजै ॥

तब उसने (मारीचने) कहा—हे दशशीश! सुनिये। वे मनुष्यरूपमें चराचरके ईश्वर हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिये। उन्हींके मारनेसे मरना और उनके जिलानेसे

जीना होता है (सबका जीवन-मरण उन्हींके अधीन है) ॥ २ ॥

मुनि मख राखन गयउ कुमारा । बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा ॥
सत जोजन आयउँ छन माहीं । तिन्ह सन बयरु किऐँ भल नाहीं ॥

यही राजकुमार मुनि विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये गये थे। उस समय श्रीरघुनाथजीने बिना फलका बाण मुझे मारा था, जिससे मैं क्षणभरमें सौ योजनपर आ गिरा। उनसे वैर करनेमें भलाई नहीं है ॥ ३ ॥

भइ मम कीट भृंग की नाई । जहँ तहँ मैं देखउँ दोउ भाई ॥
जौं नर तात तदपि अति सूरा । तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा ॥

मेरी दशा तो भृङ्गीके कीड़ेकी-सी हो गयी है। अब मैं जहाँ-तहाँ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाइयोंको ही देखता हूँ। और हे तात! यदि वे मनुष्य हैं तो भी बड़े शूरवीर हैं। उनसे विरोध करनेमें पूरा न पड़ेगा (सफलता नहीं मिलेगी) ॥ ४ ॥

दो० — जेहिं ताड़का सुबाहु हति खंडेउ हर कोदंड ।

खर दूषन तिसिरा बधेउ मनुज कि अस बरिबंड ॥ २५ ॥

जिसने ताड़का और सुबाहुको मारकर शिवजीका धनुष तोड़ दिया और खर, दूषण और त्रिशिराका वध कर डाला, ऐसा प्रचण्ड बली भी कहीं मनुष्य हो सकता है? ॥ २५ ॥

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी । सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ॥
गुरु जिमि मूढ़ करसि मम बोधा । कहु जग मोहि समान को जोधा ॥

अतः अपने कुलकी कुशल विचारकर आप घर लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत-सी गालियाँ दीं (दुर्वचन कहे)। [कहा—] अरे मूर्ख! तू गुरुकी तरह मुझे ज्ञान सिखाता है? बता तो, संसारमें मेरे समान योद्धा कौन है? ॥ १ ॥

तब मारीच हृदयँ अनुमाना । नवहि बिरोधें नहिं कल्याणा ॥
सस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कवि भानस गुनी ॥

तब मारीचने हृदयमें अनुमान किया कि शस्त्री (शस्त्रधारी), मर्मी (भेद जाननेवाला), समर्थ स्वामी, मूर्ख, धनवान्, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया—इन नौ व्यक्तियोंसे विरोध (वैर) करनेमें कल्याण (कुशल) नहीं होता ॥ २ ॥

उभय भाँति देखा निज मरना । तब ताकिसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागें । कस न मरीं रघुपति सर लागें ॥

जब मारीचने दोनों प्रकारसे अपना मरण देखा, तब उसने श्रीरघुनाथजीकी शरण तकी (अर्थात् उनकी शरण जानेमें ही कल्याण समझा)। [सोचा कि] उत्तर देते ही (नाहीं करते ही) यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथजीके बाण लगनेसे ही क्यों न मरूँ? ॥ ३ ॥

अस जियँ जानि दसानन संग। चला राम पद प्रेम अभंगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहउँ परम सनेही ॥

हृदयमें ऐसा समझकर वह रावणके साथ चला। श्रीरामजीके चरणोंमें उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनमें इस बातका अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं अपने परम स्नेही श्रीरामजीको देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावणको नहीं जनाया ॥ ४ ॥

छं०— निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्रीसहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं ॥
निर्बान दायक क्रोध जा कर भगति अबसहि बसकरी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी ॥

[वह मन-ही-मन सोचने लगा] अपने परम प्रियतमको देखकर नेत्रोंको सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजीसहित और छोटे भाई लक्ष्मणजीसमेत कृपानिधान श्रीरामजीके चरणोंमें मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन अवश (किसीके वशमें न होनेवाले स्वतन्त्र भगवान्) को भी वशमें करनेवाली है, अहा! वे ही आनन्दके समुद्र श्रीहरि अपने हाथोंसे बाण सन्धानकर मेरा वध करेंगे!

दो०— मम पाछें धर धावत धरें सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहउँ धन्य न मो सम आन ॥ २६ ॥

धनुष-बाण धारण किये मेरे पीछे-पीछे पृथ्वीपर (पकड़नेके लिये) दौड़ते हुए प्रभुको मैं फिर-फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नहीं है ॥ २६ ॥

तेहि बन निकट दसानन गयऊ। तब मारीच कपटमृग भयऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥

जब रावण उस वनके (जिस वनमें श्रीरघुनाथजी रहते थे) निकट पहुँचा, तब मारीच कपटमृग बन गया। वह अत्यन्त ही विचित्र था, कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता। सोनेका शरीर मणियोंसे जड़कर बनाया था ॥ १ ॥

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेधा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। एहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥

सीताजीने उस परम सुन्दर हिरनको देखा, जिसके अङ्ग-अङ्गकी छटा अत्यन्त मनोहर थी। [वे कहने लगीं—] हे देव! हे कृपालु रघुवीर! सुनिये। इस मृगकी छाल बहुत ही सुन्दर है ॥ २ ॥

सत्यसंध प्रभु बधि करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काजु सँवारन ॥

जानकीजीने कहा—हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमड़ा ला दीजिये। तब श्रीरघुनाथजी [मारीचके कपटमृग बननेका] सब कारण जानते हुए भी,

देवताओंका कार्य बनानेके लिये हर्षित होकर उठे ॥ ३ ॥

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा । करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई । फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥

हिरनको देखकर श्रीरामजीने कमरमें फेंटा बाँधा और हाथमें धनुष लेकर उसपर सुन्दर (दिव्य) बाण चढ़ाया । फिर प्रभुने लक्ष्मणजीको समझाकर कहा—हे भाई ! वनमें बहुत-से राक्षस फिरते हैं ॥ ४ ॥

सीता केरि करेहु रखवारी । बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी । धाए रामु सरासन साजी ॥

तुम बुद्धि और विवेकके द्वारा बल और समयका विचार करके सीताकी रखवाली करना । प्रभुको देखकर मृग भाग चला । श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढ़ाकर उसके पीछे दौड़े ॥ ५ ॥

निगम नेति सिव ध्यान न पावा । मायामृग पाछें सो धावा ॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई । कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छपाई ॥

वेद जिनके विषयमें 'नेति-नेति' कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हें ध्यानमें नहीं पाते (अर्थात् जो मन और वाणीसे नितान्त परे हैं), वे ही श्रीरामजी मायासे बने हुए मृगके पीछे दौड़ रहे हैं । वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है । कभी तो प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है ॥ ६ ॥

प्रगटत दुरत करत छल भूरी । एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी ॥
तब तकि राम कठिन सर मारा । धरनि परेउ करि घोर पुकारा ॥

इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरे छल करता हुआ वह प्रभुको दूर ले गया । तब श्रीरामचन्द्रजीने तककर (निशाना साधकर) कठोर बाण मारा, [जिसके लगते ही] वह घोर शब्द करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ७ ॥

लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा । पाछें सुमिरेसि मन महुँ रामा ॥
प्राण तजत प्रगटेसि निज देहा । सुमिरेसि रामु समेत सनेहा ॥

पहले लक्ष्मणजीका नाम लेकर उसने पीछे मनमें श्रीरामजीका स्मरण किया । प्राण त्याग करते समय उसने अपना (राक्षसी) शरीर प्रकट किया और प्रेमसहित श्रीरामजीका स्मरण किया ॥ ८ ॥

अंतर प्रेम तासु पहिचाना । मुनि दुर्लभ गति दीन्हि सुजाना ॥ ९ ॥

सुजान (सर्वज्ञ) श्रीरामजीने उसके हृदयके प्रेमको पहचानकर उसे वह गति (अपना परमपद) दी जो मुनियोंको भी दुर्लभ है ॥ ९ ॥

दो०— बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभु गुन गाथ ।

निज पद दीन्ह असुर कहुँ दीनबंधु रघुनाथ ॥ २७ ॥

देवता बहुत-से फूल बरसा रहे हैं और प्रभुके गुणोंकी गाथाएँ (स्तुतियाँ) गा

रहे हैं [कि] श्रीरघुनाथजी ऐसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुरको भी अपना परम पद दे दिया ॥ २७ ॥

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा । सोह चाप कर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता । कह लछिमन सन परम सभीता ॥

दुष्ट मारीचको मारकर श्रीरघुवीर तुरंत लौट पड़े । हाथमें धनुष और कमरमें तरकस शोभा दे रहा है । इधर जब सीताजीने दुःखभरी वाणी (मरते समय मारीचकी 'हा लक्ष्मण' की आवाज) सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजीसे कहने लगीं— ॥ १ ॥

जाहु बेगि संकट अति भ्राता । लछिमन बिहसि कहा सुनु माता ॥
भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई । सपनेहुँ संकट परइ कि सोई ॥

तुम शीघ्र जाओ, तुम्हारे भाई बड़े संकटमें हैं । लक्ष्मणजीने हँसकर कहा— हे माता ! सुनो, जिनके भृकुटिविलास (भौंके इशारे) मात्रसे सारी सृष्टिका लय (प्रलय) हो जाता है, वे श्रीरामजी क्या कभी स्वप्नमें भी संकटमें पड़ सकते हैं ? ॥ २ ॥

मरम बचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥

इसपर जब सीताजी कुछ मर्म-वचन (हृदयमें चुभनेवाले वचन) कहने लगीं, तब भगवान्की प्रेरणासे लक्ष्मणजीका मन भी चञ्चल हो उठा । वे श्रीसीताजीको वन और दिशाओंके देवताओंको सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमाके लिये राहुरूप श्रीरामजी थे ॥ ३ ॥

सून बीच दसकंधर देखा । आवा निकट जती कें बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराहीं । निसि न नीद दिन अन्न न खाहीं ॥

रावण सूना मौका देखकर यति (संन्यासी) के वेषमें श्रीसीताजीके समीप आया । जिसके डरसे देवता और दैत्यतक इतना डरते हैं कि रातको नींद नहीं आती और दिनमें [भरपेट] अन्न नहीं खाते— ॥ ४ ॥

सो दससीस स्वान की नाई । इत उत चितइ चला भड़िहाई ॥
इमि कुपंथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥

वही दस सिरवाला रावण कुत्तेकी तरह इधर-उधर ताकता हुआ भड़िहाई* (चोरी) के लिये चला । [काकभुशुण्डिजी कहते हैं—] हे गरुड़जी ! इस प्रकार कुमार्गपर पैर रखते ही शरीरमें तेज तथा बुद्धि एवं बलका लेश भी नहीं रह जाता ॥ ५ ॥

* सूना पाकर कुत्ता चुपके-से बर्तन-भाड़ोंमें मुँह डालकर कुछ चुरा ले जाता है उसे, 'भड़िहाई' कहते हैं ।

नाना बिधि करि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाई । बोलेहु बचन दुष्ट की नाई ॥

रावणने अनेकों प्रकारकी सुहावनी कथाएँ रचकर सीताजीको राजनीति, भय और प्रेम

दिखलाया। सीताजीने कहा—हे यति गोसाईं! सुनो, तुमने तो दुष्टकी तरह वचन कहे ॥ ६ ॥
तब रावन निज रूप देखावा। भई सभय जब नाम सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढ़ा। आइ गयउ प्रभु रहु खल ठाढ़ा ॥

तब रावणने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयीं। उन्होंने गहरा धीरज धरकर कहा—‘अरे दुष्ट! खड़ा तो रह, प्रभु आ गये’ ॥ ७ ॥

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥

जैसे सिंहकी स्त्रीको तुच्छ खरगोश चाहे, वैसे ही अरे राक्षसराज! तू [मेरी चाह करके] कालके वश हुआ है। ये वचन सुनते ही रावणको क्रोध आ गया, परन्तु मनमें उसने सीताजीके चरणोंकी वन्दना करके सुख माना ॥ ८ ॥

दो०— क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।

चला गगनपथ आतुर भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥ २८ ॥

फिर क्रोधमें भरकर रावणने सीताजीको रथपर बैठा लिया और वह बड़ी उतावलीके साथ आकाशमार्गसे चला; किन्तु डरके मारे उससे रथ हाँका नहीं जाता था ॥ २८ ॥

हा जग एक बीर रघुराया। केहिं अपराध बिसारेहु दाया ॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥

[सीताजी विलाप कर रही थीं—] हा जगत्के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी! आपने किस अपराधसे मुझपर दया भुला दी। हे दुःखोंके हरनेवाले, हे शरणागतको सुख देनेवाले, हा रघुकुलरूपी कमलके सूर्य! ॥ १ ॥

हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा। सो फलु पायउँ कीन्हेउँ रोसा ॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही ॥

हा लक्ष्मण! तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने क्रोध किया, उसका फल पाया। श्रीजानकीजी बहुत प्रकारसे विलाप कर रही हैं—[हाय!] प्रभुकी कृपा तो बहुत है, परन्तु वे स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं ॥ २ ॥

बिपति मोरि को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा ॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी ॥

प्रभुको मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे? यज्ञके अन्नको गदहा खाना चाहता है। सीताजीका भारी विलाप सुनकर जड़-चेतन सभी जीव दुःखी हो गये ॥ ३ ॥

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुलतिलक नारि पहिचानी ॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई। जिमि मलेछ बस कपिला गाई ॥

गृध्रराज जटायुने सीताजीकी दुःखभरी वाणी सुनकर पहचान लिया कि ये

रघुकुलतिलक श्रीरामचन्द्रजीकी पत्नी हैं। [उसने देखा कि] नीच राक्षस इनको [बुरी तरह] लिये जा रहा है, जैसे कपिला गाय म्लेच्छके पाले पड़ गयी हो ॥ ४ ॥

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहउँ जातुधान कर नासा ॥
धावा क्रोधवंत खग कैसें। छूटइ पबि परबत कहँ जैसें ॥

[वह बोला—] हे सीते पुत्री! भय मत कर। मैं इस राक्षसका नाश करूँगा। [यह कहकर] वह पक्षी क्रोधमें भरकर कैसे दौड़ा, जैसे पर्वतकी ओर वज्र छूटता हो ॥ ५ ॥

रे रे दुष्ट ठाढ़ किन होही। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही ॥
आवत देखि कृतांत समाना। फिरि दसकंधर कर अनुमाना ॥

[उसने ललकारकर कहा—] रे रे दुष्ट! खड़ा क्यों नहीं होता? निडर होकर चल दिया! मुझे तूने नहीं जाना? उसको यमराजके समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मनमें अनुमान करने लगा— ॥ ६ ॥

की मैनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥

यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियोंका स्वामी गरुड़। पर वह (गरुड़) तो अपने स्वामी विष्णुसहित मेरे बलको जानता है! [कुछ पास आनेपर] रावणने उसे पहचान लिया [और बोला—] यह तो बूढ़ा जटायु है! यह मेरे हाथरूपी तीर्थमें शरीर छोड़ेगा ॥ ७ ॥

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावन मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहिं त अस होइहि बहुबाहू ॥

यह सुनते ही गीध क्रोधमें भरकर बड़े वेगसे दौड़ा और बोला—रावण! मेरी सिखावन सुन। जानकीजीको छोड़कर कुशलपूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले! ऐसा होगा कि — ॥ ८ ॥

राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥

श्रीरामजीके क्रोधरूपी अत्यन्त भयानक अग्निमें तेरा सारा वंश पतिंगा [होकर भस्म] हो जायगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नहीं देता। तब गीध क्रोध करके दौड़ा ॥ ९ ॥

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥

उसने [रावणके] बाल पकड़कर उसे रथके नीचे उतार लिया, रावण पृथ्वीपर गिर पड़ा। गीध सीताजीको एक ओर बैठाकर फिर लौटा और चोंचोंसे मार-मारकर रावणके शरीरको विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घड़ीके लिये मूर्च्छा हो गयी ॥ १० ॥

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पंख परा खग धरनी। सुभिरि राम करि अद्भुत करनी ॥

तब खिसियाये हुए रावणने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक कटार निकाली और उससे जटायुके पंख काट डाले। पक्षी (जटायु) श्रीरामजीकी अद्भुत लीलाका स्मरण करके पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ११ ॥

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी। चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता। व्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥

सीताजीको फिर रथपर चढ़ाकर रावण बड़ी उतावलीके साथ चला, उसे भय कम न था। सीताजी आकाशमें विलाप करती हुई जा रही हैं। मानो व्याधके वशमें पड़ी हुई (जालमें फँसी हुई) कोई भयभीत हिरनी हो! ॥ १२ ॥

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी। कहि हरि नाम दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गयऊ। बन असोक महँ राखत भयऊ ॥

पर्वतपर बैठे हुए बंदरोंको देखकर सीताजीने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया। इस प्रकार वह सीताजीको ले गया और उन्हें अशोकवनमें जा रखा ॥ १३ ॥

दो० — हारि परा खल बहु बिधि भय अरु प्रीति देखाइ।

तब असोक पादप तर राखिसि जतन कराइ ॥ २९ (क) ॥

सीताजीको बहुत प्रकारसे भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया, तब उन्हें यत्न कराके (सब व्यवस्था ठीक कराके) अशोक वृक्षके नीचे रख दिया ॥ २९ (क) ॥

नवाह्नपारायण, छठा विश्राम

जेहि बिधि कपट कुरंग सँग धाइ चले श्रीराम।

सो छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम ॥ २९ (ख) ॥

जिस प्रकार कपटमृगके साथ श्रीरामजी दौड़ चले थे, उसी छविको हृदयमें रखकर वे हरिनाम (रामनाम) रटती रहती हैं ॥ २९ (ख) ॥

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ॥
जनकसुता परिहरिहु अकेली। आयहु तात बचन मम पेली ॥

[इधर] श्रीरघुनाथजीने छोटे भाई लक्ष्मणजीको आते देखकर बाह्यरूपमें बहुत चिन्ता की [और कहा—] हे भाई! तुमने जानकीको अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर यहाँ चले आये! ॥ १ ॥

निसिचर निकर फिरहिं बन माहीं। मम मन सीता आश्रम नाहीं ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥

राक्षसोंके झुंड वनमें फिरते रहते हैं। मेरे मनमें ऐसा आता है कि सीता आश्रममें नहीं है। छोटे भाई लक्ष्मणजीने श्रीरामजीके चरणकमलोंको पकड़कर हाथ जोड़कर कहा—हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नहीं है ॥ २ ॥

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ । गोदावरि तट आश्रम जहवाँ ॥
आश्रम देखि जानकी हीना । भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥

लक्ष्मणजीसहित प्रभु श्रीरामजी वहाँ गये जहाँ गोदावरीके तटपर उनका आश्रम था । आश्रमको जानकीजीसे रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्यकी भाँति व्याकुल और दीन (दुःखी) हो गये ॥ ३ ॥

हा गुन खानि जानकी सीता । रूप शील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती । पूछत चले लता तरु पाँती ॥

[वे विलाप करने लगे—] हा गुणोंकी खान जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमोंमें पवित्र सीते ! लक्ष्मणजीने बहुत प्रकारसे समझाया । तब श्रीरामजी लताओं और वृक्षोंकी पंक्तियोंसे पूछते हुए चले— ॥ ४ ॥

हे खग मृग हे मधुकर श्रेणी । तुम्ह देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना । मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥

हे पक्षियो ! हे पशुओ ! हे भौरोंकी पंक्तियो ! तुमने कहीं मृगनयनी सीताको देखा है ? खंजन, तोता, कबूतर, हिरन, मछली, भौरोंका समूह, प्रवीण कोयल, ॥ ५ ॥

कुंद कली दाड़िम दामिनी । कमल सरद ससि अहिभामिनी ॥
बरुन पास मनोज धनु हंसा । गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥

कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरदका चन्द्रमा और नागिनी, वरुणका पाश, कामदेवका धनुष, हंस, गज और सिंह—ये सब आज अपनी प्रशंसा सुन रहे हैं ॥ ६ ॥

श्रीफल कनक कदलि हरषाहीं । नेकु न संक सकुच मन माहीं ॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू । हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥

बेल, सुवर्ण और केला हर्षित हो रहे हैं । इनके मनमें जरा भी शङ्का और संकोच नहीं है । हे जानकी ! सुनो, तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं, मानो राज पा गये हों । (अर्थात् तुम्हारे अंगोंके सामने ये सब तुच्छ, अपमानित और लज्जित थे । आज तुम्हें न देखकर ये अपनी शोभाके अभिमानमें फूल रहे हैं) ॥ ७ ॥

किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं । प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥

तुमसे यह अनख (स्पर्धा) कैसे सही जाती है ? हे प्रिये ! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यों नहीं होती ? इस प्रकार [अनन्त ब्रह्माण्डोंके अथवा महामहिमामयी स्वरूपाशक्ति श्रीसीताजीके] स्वामी श्रीरामजी सीताजीको खोजते हुए [इस प्रकार] विलाप करते हैं, मानो कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो ॥ ८ ॥

पूरनकाम राम सुख रासी । मनुजचरित कर अज अबिनासी ॥
आगें परा गीधपति देखा । सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

पूर्णकाम, आनन्दकी राशि, अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्योंके-से चरित्र कर रहे हैं। आगे [जानेपर] उन्होंने गृध्रपति जटायुको पड़ा देखा। वह श्रीरामजीके चरणोंका स्मरण कर रहा था, जिनमें [ध्वजा, कुलिश आदिकी] रेखाएँ (चिह्न) हैं ॥ ९ ॥

दो०— कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।

निरखि राम छबि धाम मुख बिगत भई सब पीर ॥ ३० ॥

कृपासागर श्रीरघुवीरने अपने करकमलसे उसके सिरका स्पर्श किया (उसके सिरपर कर-कमल फेर दिया)। शोभाधाम श्रीरामजीका [परम सुन्दर] मुख देखकर उसकी सब पीड़ा जाती रही ॥ ३० ॥

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनहु राम भंजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन यह गति कीन्ही। तेहिं खल जनकसुता हरि लीन्ही ॥

तब धीरज धरकर गीधने यह वचन कहा—हे भव (जन्म-मृत्यु) के भयका नाश करनेवाले श्रीरामजी! सुनिये। हे नाथ! रावणने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्टने जानकीजीको हर लिया है ॥ १ ॥

लै दच्छिन दिसि गयउ गोसाईं। बिलपति अति कुररी की नाई ॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना ॥

हे गोसाईं! वह उन्हें लेकर दक्षिण दिशाको गया है। सीताजी कुररी (कुर्ज) की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थीं। हे प्रभो! मैंने आपके दर्शनोंके लिये ही प्राण रोक रखे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना ही चाहते हैं ॥ २ ॥

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेहिं बाता ॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमउ मुकुत होइ श्रुति गावा ॥

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—हे तात! शरीरको बनाये रखिये। तब उसने मुसकराते हुए मुँहसे यह बात कही—मरते समय जिनका नाम मुखमें आ जानेसे अधम (महान् पापी) भी मुक्त हो जाता है, ऐसा वेद गाते हैं— ॥ ३ ॥

सो मम लोचन गोचर आगें। राखीं देह नाथ केहि खाँगें ॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात कर्म निज तें गति पाई ॥

वही (आप) मेरे नेत्रोंके विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ! अब मैं किस कमी [की पूर्ति] के लिये देहको रखूँ? नेत्रोंमें जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे—हे तात! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मोंसे [दुर्लभ] गति पायी है ॥ ४ ॥

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहूँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा ॥

जिनके मनमें दूसरेका हित बसता है (समायां रहता है), उनके लिये जगत्में कुछ भी (कोई भी गति) दुर्लभ नहीं है। हे तात! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाममें जाइये।

मैं आपको क्या दूँ? आप तो पूर्णकाम हैं (सब कुछ पा चुके हैं) ॥ ५ ॥

दो०— सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ ।

जों मैं राम त कुल सहित कहिहि दंसानन आइ ॥ ३१ ॥

हे तात! सीताहरणकी बात आप जाकर पिताजीसे न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्बसहित वहाँ आकर स्वयं ही कहेगा ॥ ३१ ॥

गीध देह तजि धरि हरि रूपा । भूषण बहु पट पीत अनूपा ॥
श्याम गात बिसाल भुज चारी । अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥

जटायुने गीधकी देह त्यागकर हरिका रूप धारण किया और बहुत-से अनुपम (दिव्य) आभूषण और [दिव्य] पीताम्बर पहन लिये। श्याम शरीर है, विशाल चार भुजाएँ हैं और नेत्रोंमें [प्रेम तथा आनन्दके आँसुओंका] जल भरकर वह स्तुति कर रहा है— ॥ १ ॥

छं०— जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।
दससीस बाहु प्रचंड खंडन चंड सर मंडन मही ॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं ।
नित नौमि रामु कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं ॥

हे रामजी? आपकी जय हो! आपका रूप अनुपम है, आप निर्गुण हैं, सगुण हैं और सत्य ही गुणोंके (मायाके) प्रेरक हैं। दस सिरवाले रावणकी प्रचण्ड भुजाओंको खण्ड-खण्ड करनेके लिये प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वीको सुशोभित करनेवाले, जलयुक्त मेघके समान श्याम शरीरवाले, कमलके समान मुख और [लाल] कमलके समान विशाल नेत्रोंवाले, विशाल भुजाओंवाले और भव-भयसे छुड़ानेवाले कृपालु श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

बलमप्रमेयमनादिमजमब्यक्तमेकमगोचरं ।
गोबिंद गोपर द्वंद्वहर बिग्यानघन धरनीधरं ॥
जे राम मंत्र जपंत संत अनंत जन मन रंजनं ।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गंजनं ॥

आप अपरिमित बलवाले हैं, अनादि, अजन्मा, अव्यक्त (निराकार), एक, अगोचर (अलक्ष्य), गोविन्द (वेदवाक्योंद्वारा जाननेयोग्य), इन्द्रियोंसे अतीत, [जन्म-मरण, सुख-दुःख, हर्ष-शोकादि] द्वन्द्वोंको हरनेवाले, विज्ञानकी घनमूर्ति और पृथ्वीके आधार हैं तथा जो संत राम-मन्त्रको जपते हैं, उन अनन्त सेवकोंके मनको आनन्द देनेवाले हैं। उन निष्कामप्रिय (निष्कामजनोंके प्रेमी अथवा उन्हें प्रिय) तथा काम आदि दुष्टों (दुष्ट-वृत्तियों) के दलका दलन करनेवाले श्रीरामजीको मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥ २ ॥

जेहि श्रुति निरंजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावहीं ।
करि ध्यान ग्यान बिराग जोग अनेक मुनि जेहि पावहीं ॥
सो प्रगट करुना कंद सोभा बृंद अग जग मोहई ।
मम हृदय पंकज भृंग अंग अनंग बहु छबि सोहई ॥

जिनको श्रुतियाँ निरञ्जन (मायासे परे), ब्रह्म, व्यापक, निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती हैं। मुनि जिन्हें ध्यान, ज्ञान, वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द, शोभाके समूह [स्वयं श्रीभगवान्] प्रकट होकर जड़-चेतन समस्त जगत्को मोहित कर रहे हैं। मेरे हृदय-कमलके भ्रमररूप उनके अंग-अंगमें बहुत-से कामदेवोंकी छवि शोभा पा रही है ॥ ३ ॥

जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा ।
पस्यंति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा ॥
सो राम रमा निवास संतत दास बस त्रिभुवन धनी ।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी ॥

जो अगम और सुगम हैं, निर्मलस्वभाव हैं, विषम और सम हैं और सदा शीतल (शान्त) हैं। मन और इन्द्रियोंको सदा वशमें करते हुए योगी बहुत साधन करनेपर जिन्हें देख पाते हैं, वे तीनों लोकोंके स्वामी, रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासोंके वशमें रहते हैं, वे ही मेरे हृदयमें निवास करें, जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमनको मिटानेवाली है ॥ ४ ॥

दो० — अबिरल भगति मागि बर गीध गयउ हरिधाम ।

तेहि की क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम ॥ ३२ ॥

अखण्ड भक्तिका वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरिके परमधामको चला गया। श्रीरामचन्द्रजीने उसकी [दाहकर्म आदि सारी] क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथोंसे कीं ॥ ३२ ॥
कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥

श्रीरघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले, दीनदयालु और बिना ही कारण कृपालु हैं। गीध [पक्षियोंमें भी] अधम पक्षी और मांसाहारी था, उसको भी वह दुर्लभ गति दी, जिसे योगीजन माँगते रहते हैं ॥ १ ॥

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥
पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! सुनो, वे लोग अभागे हैं जो भगवान्को छोड़कर विषयोंसे अनुराग करते हैं। फिर दोनों भाई सीताजीको खोजते हुए आगे चले। वे वनकी सघनता देखते जाते हैं ॥ २ ॥

संकुल लता बिटप घन कानन । बहु खग मृग तहँ गज पंचानन ॥
आवत पंथ कबंध निपाता । तेहिं सब कही साप कै बाता ॥

वह सघन वन लताओं और वृक्षोंसे भरा है । उसमें बहुत-से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं । श्रीरामजीने रास्तेमें आते हुए कबंध राक्षसको मार डाला । उसने अपने शापकी सारी बात कही ॥ ३ ॥

दुरबासा मोहि दीन्ही सापा । प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ॥
सुनु गंधर्व कहउँ मैं तोही । मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥

[वह बोला—] दुर्वासाजीने मुझे शाप दिया था । अब प्रभुके चरणोंको देखनेसे वह पाप मिट गया । [श्रीरामजीने कहा—] हे गन्धर्व ! सुनो, मैं तुम्हें कहता हूँ, ब्राह्मणकुलसे द्रोह करनेवाला मुझे नहीं सुहाता ॥ ४ ॥

दो०— मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव ।

मोहि समेत बिरंचि सिव बस ताकें सब देव ॥ ३३ ॥

मन, वचन और कर्मसे कपट छोड़कर जो भूदेव ब्राह्मणोंकी सेवा करता है, मुझसमेत ब्रह्मा, शिव आदि सब देवता उसके वशमें हो जाते हैं ॥ ३३ ॥

सापत ताड़त परुष कहंता । बिप्र पूज्य अस गावहिं संता ॥
पूजिअ बिप्र शील गुन हीना । सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना ॥

शाप देता हुआ, मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूजनीय है, ऐसा संत कहते हैं । शील और गुणसे हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है । और गुणगणोंसे युक्त और ज्ञानमें निपुण भी शूद्र पूजनीय नहीं है ॥ १ ॥

कहि निज धर्म ताहि समुझावा । निज पद प्रीति देखि मन भावा ॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई । गयउ गगन आपनि गति पाई ॥

श्रीरामजीने अपना धर्म (भागवत-धर्म) कहकर उसे समझाया । अपने चरणोंमें प्रेम देखकर वह उनके मनको भाया । तदनन्तर श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंमें सिर नवाकर वह अपनी गति (गन्धर्वका स्वरूप) पाकर आकाशमें चला गया ॥ २ ॥

ताहि देइ गति राम उदारा । सबरी कें आश्रम पगु धारा ॥
सबरी देखि राम गृहँ आए । मुनि के बचन समुझि जियँ भाए ॥

उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजीके आश्रममें पधारे । शबरीजीने श्रीरामचन्द्रजीको घरमें आये देखा, तब मुनि मतङ्गजीके वचनोंको याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया ॥ ३ ॥

सरसिज लोचन बाहु बिसाला । जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुंदर दोउ भाई । सबरी परी चरन लपटाई ॥

कमल-सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले, सिरपर जटाओंका मुकुट और हृदयपर

वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनों भाइयोंके चरणोंमें शबरीजी लिपट पड़ीं ॥ ४ ॥

प्रेम मगन मुख बचन न आवा । पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे । पुनि सुंदर आसन बैठारे ॥

वे प्रेममें मग्न हो गयीं, मुखसे वचन नहीं निकलता । बार-बार चरण-कमलोंमें सिर नवा रही हैं । फिर उन्होंने जल लेकर आदरपूर्वक दोनों भाइयोंके चरण धोये और फिर उन्हें सुन्दर आसनोंपर बैठाया ॥ ५ ॥

दो० — कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहूँ आनि ।

प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि ॥ ३४ ॥

उन्होंने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द, मूल और फल लाकर श्रीरामजीको दिये । प्रभुने बार-बार प्रशंसा करके उन्हें प्रेमसहित खाया ॥ ३४ ॥

पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी । प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥
केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी । अधम जाति मैं जड़मति भारी ॥

फिर वे हाथ जोड़कर आगे खड़ी हो गयीं । प्रभुको देखकर उनका प्रेम अत्यन्त बढ़ गया । [उन्होंने कहा—] मैं किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ ? मैं नीच जातिकी और अत्यन्त मूढ़बुद्धि हूँ ॥ १ ॥

अधम ते अधम अधम अति नारी । तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता । मानउँ एक भगति कर नाता ॥

जो अधमसे भी अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अत्यन्त अधम हैं; और उनमें भी हे पापनाशन ! मैं मन्दबुद्धि हूँ । श्रीरघुनाथजीने कहा—हे भामिनि ! मेरी बात सुन ! मैं तो केवल एक भक्तिहीका सम्बन्ध मानता हूँ ॥ २ ॥

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥

जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता—इन सबके होनेपर भी भक्तिसे रहित मनुष्य कैसा लगता है, जैसे जलहीन बादल [शोभाहीन] दिखायी पड़ता है ॥ ३ ॥

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगी । दूसरि रति मम कथा प्रसंगी ॥

मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ । तू सावधान होकर सुन और मनमें धारण कर । पहली भक्ति है संतोंका सत्संग । दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंगमें प्रेम ॥ ४ ॥

दो० — गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान ।

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥ ३५ ॥

तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरुके चरणकमलोंकी सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहोंका गान करे ॥ ३५ ॥

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा । निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥

मेरे (राम) मन्त्रका जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास—यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदोंमें प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियोंका निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्योंसे वैराग्य और निरंतर संत पुरुषोंके धर्म (आचरण) में लगे रहना ॥ १ ॥

सातवँ सम मोहि मय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥

सातवीं भक्ति है जगत्भरको समभावसे मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतोंको मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय, उसीमें संतोष करना और स्वप्नमें भी पराये दोषोंको न देखना ॥ २ ॥

नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्थामें हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवोंमेंसे जिनके एक भी होती है, वह स्त्री-पुरुष, जड़-चेतन कोई भी हो— ॥ ३ ॥

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ॥
जोगि बृंद दुर्लभ गति जोई । तो कहूँ आजु सुलभ भइ सोई ॥

हे भामिनि! मुझे वही अत्यन्त प्रिय है। फिर तुझमें तो सभी प्रकारकी भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियोंको भी दुर्लभ है, वही आज तेरे लिये सुलभ हो गयी है ॥ ४ ॥

मम दरसन फल परम अनूपा । जीव पाव निज सहज सरूपा ॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनी । जानहि कहु करिबरगामिनी ॥

मेरे दर्शनका परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूपको प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि! अब यदि तू गजगामिनी जानकीकी कुछ खबर जानती हो तो बता ॥ ५ ॥

पंपा सरहि जाहु रघुराई । तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा । जानतहूँ पूछहु मतिधीरा ॥

[शबरीने कहा—] हे रघुनाथजी! आप पंपा नामक सरोवरको जाइये, वहाँ आपकी सुग्रीवसे मित्रता होगी। हे देव! हे रघुवीर! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं! ॥ ६ ॥

बार बार प्रभु पद सिरु नाई । प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥

बार-बार प्रभुके चरणोंमें सिर नवाकर, प्रेमसहित उसने सब कथा सुनायी ॥ ७ ॥

छं० — कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे ।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥
नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू ।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू ॥

सब कथा कहकर भगवान्के मुखके दर्शन कर, हृदयमें उनके चरणकमलोंको धारण कर लिया और योगाग्निसे देहको त्यागकर (जलाकर) वह उस दुर्लभ हरिपदमें लीन हो गयी, जहाँसे लौटना नहीं होता । तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेकों प्रकारके कर्म, अधर्म और बहुत-से मत—ये सब शोकप्रद हैं; हे मनुष्यो! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजीके चरणोंमें प्रेम करो ।

दो० — जाति हीन अघ जन्म महि मुक्त कीन्हि असि नारि ।

महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥ ३६ ॥

जो नीच जातिकी और पापोंकी जन्मभूमि थी, ऐसी स्त्रीको भी जिन्होंने मुक्त कर दिया, अरे महादुर्बुद्धि मन! तू ऐसे प्रभुको भूलकर सुख चाहता है? ॥ ३६ ॥

चले राम त्यागा बन सोऊ । अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा । कहत कथा अनेक संबादा ॥

श्रीरामचन्द्रजीने उस वनको भी छोड़ दिया और वे आगे चले । दोनों भाई अतुलनीय बलवान् और मनुष्योंमें सिंहके समान हैं । प्रभु विरहीकी तरह विषाद करते हुए अनेकों कथाएँ और संवाद कहते हैं— ॥ १ ॥

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा । देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा । मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ॥

हे लक्ष्मण! जरा वनकी शोभा तो देखो । इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध नहीं होगा? पक्षी और पशुओंके समूह सभी स्त्रीसहित हैं । मानो वे मेरी निन्दा कर रहे हैं ॥ २ ॥

हमहि देखि मृग निकर पराहीं । मृगीं कहहिं तुम्ह कहँ भय नाहीं ॥
तुम्ह आनंद करहु मृग जाए । कंचन मृग खोजन ए आए ॥

हमें देखकर [जब डरके मारे] हिरनोंके झुंड भागने लगते हैं, तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं—तुमको भय नहीं है । तुम तो साधारण हिरनोंसे पैदा हुए हो, अतः तुम आनन्द करो । ये तो सोनेका हिरन खोजने आये हैं ॥ ३ ॥

संग लाइ करिनीं करि लेहीं । मानहुँ मोहि सिखावनु देहीं ॥
सास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिअ । भूप सुसेवित बस नहिं लेखिअ ॥

हाथी हथिनियोंको साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते हैं [कि स्त्रीको कभी अकेली नहीं छोड़ना चाहिये]। भलीभाँति चिन्तन किये हुए शास्त्रको भी बार-बार देखते रहना चाहिये। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजाको वशमें नहीं समझना चाहिये ॥ ४ ॥

राखिअ नारि जदपि उर माहीं। जुबती सास्त्र नृपति बस नाहीं ॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा ॥

और स्त्रीको चाहे हृदयमें ही क्यों न रखा जाय; परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसीके वशमें नहीं रहते। हे तात! इस सुन्दर वसन्तको तो देखो। प्रियाके बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है ॥ ५ ॥

दो०— बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।

सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल ॥ ३७ (क) ॥

मुझे विरहसे व्याकुल, बलहीन और बिलकुल अकेला जानकर कामदेवने वन, भौरों और पक्षियोंको साथ लेकर मुझपर धावा बोल दिया ॥ ३७ (क) ॥

देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।

डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात ॥ ३७ (ख) ॥

परन्तु जब उसका दूत यह देख गया कि मैं भाईके साथ हूँ (अकेला नहीं हूँ), तब उसकी बात सुनकर कामदेवने मानो सेनाको रोककर डेरा डाल दिया है ॥ ३७ (ख) ॥

बिटप बिसाल लता अरुझानी। बिबिध बितान दिए जनु तानी ॥

कदलि ताल बर धुजा पताका। देखि न मोह धीर मन जाका ॥

विशाल वृक्षोंमें लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं मानो नाना प्रकारके तंबू तान दिये गये हैं। केला और ताड़ सुन्दर ध्वजा-पताकाके समान हैं। इन्हें देखकर वही नहीं मोहित होता, जिसका मन धीर है ॥ १ ॥

बिबिध भाँति फूले तरु नाना। जनु बानैत बने बहु बाना ॥

कहुँ कहुँ सुंदर बिटप सुहाए। जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥

अनेकों वृक्ष नाना प्रकारसे फूले हुए हैं। मानो अलग-अलग बाना (वर्दी) धारण किये हुए बहुत-से तीरंदाज हों। कहीं-कहीं सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं। मानो योद्धालोग अलग-अलग होकर छावनी डाले हों ॥ २ ॥

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते ॥

मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥

कोयलें कूज रही हैं, वही मानो मतवाले हाथी [चिग्घाड़ रहे] हैं। ढेक और

महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर हैं। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी (अरबी) घोड़े हैं ॥ ३ ॥

तीतिर लावक पदचर जूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सिला दुंदुभीं झरना। चातक बंदी गुन गन बरना ॥

तीतर और बटेर पैदल सिपाहियोंके झुंड हैं। कामदेवकी सेनाका वर्णन नहीं हो सकता। पर्वतोंकी शिलाएँ रथ और जलके झरने नगाड़े हैं। पपीहे भाट हैं, जो गुणसमूह (विरदावली) का वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिबिध बयारि बसीठीं आई ॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हें। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हें ॥

भौरोंकी गुंजार भेरी और शहनाई है। शीतल, मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूतका काम लेकर आयी है। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सबको चुनौती देता हुआ विचर रहा है ॥ ५ ॥

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका ॥
एहि कें एक परम बल नारी। तेहि तें उबर सुभट सोइ भारी ॥

हे लक्ष्मण! कामदेवकी इस सेनाको देखकर जो धीर बने रहते हैं, जगत्में उन्हींकी [वीरोंमें] प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेवके एक स्त्रीका बड़ा भारी बल है। उससे जो बच जाय, वही श्रेष्ठ योद्धा है ॥ ६ ॥

दो० — तात तीनि अति प्रबल खल काम क्रोध अरु लोभ ।

मुनि बिग्यान धाम मन करहिं निमिष महुँ छोभ ॥ ३८ (क) ॥

हे तात! काम, क्रोध और लोभ—ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञानके धाम मुनियोंके भी मनोंको पलभरमें क्षुब्ध कर देते हैं ॥ ३८ (क) ॥

लोभ कें इच्छा दंभ बल काम कें केवल नारि ।

क्रोध कें परुष बचन बल मुनिबर कहहिं बिचारि ॥ ३८ (ख) ॥

लोभको इच्छा और दम्भका बल है, कामको केवल स्त्रीका बल है और क्रोधको कठोर वचनोंका बल है; श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं ॥ ३८ (ख) ॥

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह कें मन बिरति दृढ़ाई ॥

[शिवजी कहते हैं—] हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी गुणातीत (तीनों गुणोंसे परे), चराचर जगत्के स्वामी और सबके अन्तरकी जाननेवाले हैं। [उपर्युक्त बातें कहकर] उन्होंने कामी लोगोंकी दीनता (बेबसी) दिखलायी है और धीर (विवेकी) पुरुषोंके मनमें वैराग्यको दृढ़ किया है ॥ १ ॥

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम कीं दाय्या ॥
सो नर इंद्रजाल नहिं भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥

क्रोध, काम, लोभ, मद और माया—ये सभी श्रीरामजीकी दयासे छूट जाते हैं। वह नट (नटराज भगवान्) जिसपर प्रसन्न होता है, वह मनुष्य इंद्रजाल (माया) में नहीं भूलता ॥ २ ॥

उमा कहउं मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥
पुनि प्रभु गए सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा ॥

हे उमा! मैं तुम्हें अपना अनुभव कहता हूँ—हरिका भजन ही सत्य है, यह सारा जगत् तो स्वप्न [की भाँति झूठा] है। फिर प्रभु श्रीरामजी पंपा नामक सुन्दर और गहरे सरोवरके तीरपर गये ॥ ३ ॥

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी ॥
जहँ तहँ पिअहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा ॥

उसका जल संतोंके हृदय—जैसा निर्मल है। मनको हरनेवाले सुन्दर चार घाट बाँधे हुए हैं। भाँति-भाँतिके पशु जहाँ-तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषोंके घर याचकोंकी भीड़ लगी हो! ॥ ४ ॥

दो०— पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।

मायाछन्न न देखिऐ जैसें निर्गुन ब्रह्म ॥ ३९ (क) ॥

घनी पुरइनों (कमलके पत्तों) की आड़में जलका जल्दी पता नहीं मिलता। जैसे मायासे ढके रहनेके कारण निर्गुण ब्रह्म नहीं दीखता ॥ ३९ (क) ॥

सुखी मीन सब एकरस अति अगाध जल माहिं।

जथा धर्मशीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं ॥ ३९ (ख) ॥

उस सरोवरके अत्यन्त अथाह जलमें सब मछलियाँ सदा एकरस (एक समान) सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषोंके सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं ॥ ३९ (ख) ॥

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा ॥
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा ॥

उसमें रंग-बिरंगे कमल खिले हुए हैं। बहुत-से भौरे मधुर स्वरसे गुंजार कर रहे हैं। जलके मुर्गे और राजहंस बोल रहे हैं, मानो प्रभुको देखकर उनकी प्रशंसा कर रहे हों ॥ १ ॥

चक्रबाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥
सुंदर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥

चक्रवाक, बगुले आदि पक्षियोंका समुदाय देखते ही बनता है, उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। सुन्दर पक्षियोंकी बोली बड़ी सुहावनी लगती है, मानो [रास्तेमें] जाते हुए पथिकको बुलाये लेती हो ॥ २ ॥

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए । चहु दिसि काननं बिटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदंब तमाला । पाटल पनस परास रसाला ॥

उस झील (पंपासरोवर) के समीप मुनियोंने आश्रम बना रखे हैं । उसके चारों ओर वनके सुन्दर वृक्ष हैं । चम्पा, मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि— ॥ ३ ॥

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना । चंचरीक पटली कर गाना ॥
शीतल मंद सुगंध सुभाऊ । संतत बहइ मनोहर बाऊ ॥

बहुत प्रकारके वृक्ष नये-नये पत्तों और [सुगन्धित] पुष्पोंसे युक्त हैं, [जिनपर] भौरोंके समूह गुंजार कर रहे हैं । स्वभावसे ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एवं मनको हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है ॥ ४ ॥

कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं । सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं ॥

कोयलें 'कुहू' 'कुहू' का शब्द कर रही हैं । उनकी रसीली बोली सुनकर मुनियोंका भी ध्यान टूट जाता है ॥ ५ ॥

दो० — फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराइ ।

पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ ॥ ४० ॥

फलोंके बोझसे झुककर सारे वृक्ष पृथ्वीके पास आ लगे हैं, जैसे परोपकारी पुरुष बड़ी सम्पत्ति पाकर [विनयसे] झुक जाते हैं ॥ ४० ॥

देखि राम अति रुचिर तलावा । मज्जनु कीन्ह परम सुख पावा ॥

देखी सुंदर तरुबर छाया । बैठे अनुज सहित रघुराया ॥

श्रीरामजीने अत्यन्त सुन्दर तालाब देखकर स्नान किया और परम सुख पाया । एक सुन्दर उत्तम वृक्षकी छाया देखकर श्रीरघुनाथजी छोटे भाई लक्ष्मणजीसहित बैठ गये ॥ १ ॥

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए । अस्तुति करि निज धाम सिधाए ॥

बैठे परम प्रसन्न कृपाला । कहत अनुज सन कथा रसाला ॥

फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने-अपने धामको चले गये । कृपालु श्रीरामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजीसे रसीली कथाएँ कह रहे हैं ॥ २ ॥

बिरहवंत भगवंतहि देखी । नारद मन भा सोच बिसेषी ॥

मोर साप करि अंगीकारा । सहत राम नाना दुख भारा ॥

भगवान्को विरहयुक्त देखकर नारदजीके मनमें विशेषरूपसे सोच हुआ । [उन्होंने विचार किया कि] मेरे ही शापको स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकारके दुःखोंका भार सह रहे हैं (दुःख उठा रहे हैं) ॥ ३ ॥

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई । पुनि न बनिहि अस अवसरु आई ॥
यह बिचारि नारद कर बीना । गए जहाँ प्रभु सुख आसीना ॥

ऐसे (भक्तवत्सल) प्रभुको जाकर देखूँ । फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा । यह विचारकर नारदजी हाथमें वीणा लिये हुए वहाँ गये, जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे ॥ ४ ॥

गावत राम चरित मृदु बानी । प्रेम सहित बहु भाँति बखानी ॥
करत दंडवत लिए उठाई । राखे बहुत बार उर लाई ॥

वे कोमल वाणीसे प्रेमके साथ बहुत प्रकारसे बखान-बखानकर रामचरितका गान कर [ते हुए चले आ] रहे थे । दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजीने नारदजीको उठा लिया और बहुत देरतक हृदयसे लगाये रखा ॥ ५ ॥

स्वागत पूँछि निकट बैठारे । लछिमन सादर चरन पखारे ॥

फिर स्वागत (कुशल) पूछकर पास बैठा लिया । लक्ष्मणजीने आदरके साथ उनके चरण धोये ॥ ६ ॥

दो०— नाना विधि विनती करि प्रभु प्रसन्न जियँ जानि ।

नारद बोले बचन तब जोरि सरोरुह पानि ॥ ४१ ॥

बहुत प्रकारसे विनती करके और प्रभुको मनमें प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमलके समान हाथोंको जोड़कर वचन बोले— ॥ ४१ ॥

सुनहु उदार सहज रघुनायक । सुंदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी । जद्यपि जानत अंतरजामी ॥

हे स्वभावसे ही उदार श्रीरघुनाथजी ! सुनिये । आप सुन्दर अगम और सुगम वरके देनेवाले हैं । हे स्वामी ! मैं एक वर माँगता हूँ, वह मुझे दीजिये, यद्यपि आप अन्तर्यामी होनेके नाते सब जानते ही हैं ॥ १ ॥

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ । जन सन कबहुँ कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी । जो मुनिबर न सकहु तुम्ह मागी ॥

[श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो । क्या मैं अपने भक्तोंसे कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन-सी वस्तु प्रिय लगती है, जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ? ॥ २ ॥

जन कहूँ कछु अदेय नहिं मोरें । अस बिस्वास तजहु जनि भोरें ॥
तब नारद बोले हरषाई । अस बर मागउँ करउँ ढिठाई ॥

मुझे भक्तके लिये कुछ भी अदेय नहीं है । ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो । तब नारदजी हर्षित होकर बोले—मैं ऐसा वर माँगता हूँ, यह धृष्टता करता हूँ— ॥ ३ ॥

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका । श्रुति कह अधिक एक तें एका ॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका । होउ नाथ अघ खग गन बधिका ॥

यद्यपि प्रभुके अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक-से-एक बढ़कर हैं, तो भी हे नाथ ! रामनाम सब नामोंसे बढ़कर हो और पापरूपी पक्षियोंके समूहके लिये यह वधिकके समान हो ॥ ४ ॥

दो० — राका रजनी भगति तव राम नाम सोइ सोम ।

अपर नाम उडगन बिमल बसहुँ भगत उर ब्योम ॥ ४२ (क) ॥

आपकी भक्ति पूर्णिमाकी रात्रि है; उसमें 'राम' नाम यही पूर्ण चन्द्रमा होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तोंके हृदयरूपी निर्मल आकाशमें निवास करें ॥ ४२ (क) ॥

एवमस्तु मुनि सन कहेउ कृपासिंधु रघुनाथ ।

तब नारद मन हरष अति प्रभु पद नाथउ माथ ॥ ४२ (ख) ॥

कृपासागर श्रीरघुनाथजीने मुनिसे 'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहा । तब नारदजीने मनमें अत्यन्त हर्षित होकर प्रभुके चरणोंमें मस्तक नवाया ॥ ४२ (ख) ॥

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी । पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहिं प्रेरेउ निज माया । मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥

श्रीरघुनाथजीको अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले—
हे रामजी ! हे रघुनाथजी ! सुनिये, जब आपने अपनी मायाको प्रेरित करके मुझे मोहित किया था, ॥ १ ॥

तब बिबाह मैं चाहउँ कीन्हा । प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा ॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा । भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा ॥

तब मैं विवाह करना चाहता था । हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नहीं करने दिया ? [प्रभु बोले—] हे मुनि ! सुनो, मैं तुम्हें हर्षके साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा-भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं, ॥ २ ॥

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी । जिमि बालक राखइ महतारी ॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई । तहँ राखइ जननी अरगाई ॥

मैं सदा उनकी वैसे ही रखवाली करता हूँ जैसे माता बालककी रक्षा करती है ।
छोटा बच्चा जब दौड़कर आग और साँपको पकड़ने जाता है, तो वहाँ माता उसे [अपने हाथों] अलग करके बचा लेती है ॥ ३ ॥

प्रौढ़ भएँ तेहि सुत पर माता । प्रीति करइ नहिं पाछिलि बाता ॥
मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी । बालक सुत सम दास अमानी ॥

सयाना हो जानेपर उस पुत्रपर माता प्रेम तो करती है, परन्तु पिछली बात नहीं रहती (अर्थात् मातृपरायण शिशुकी तरह फिर उसको बचानेकी चिन्ता नहीं करती, क्योंकि वह मातापर निर्भर न कर अपनी रक्षा आप करने लगता है) । ज्ञानी मेरे प्रौढ़ (सयाने) पुत्रके समान है और [तुम्हारे-जैसा] अपने बलका मान न करनेवाला सेवक मेरे शिशु पुत्रके समान है ॥ ४ ॥

जनहि मोर बल निज बल ताही । दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही ॥
यह बिचारि पंडित मोहि भजहीं । पाएहुँ ग्यान भगति नहिं तजहीं ॥

मेरे सेवकको केवल मेरा ही बल रहता है और उसे (ज्ञानीको) अपना बल होता है । पर काम-क्रोधरूपी शत्रु तो दोनोंके लिये हैं । [भक्तके शत्रुओंको मारनेकी जिम्मेवारी मुझपर रहती है, क्योंकि वह मेरे परायण होकर मेरा ही बल मानता है; परन्तु अपने बलको माननेवाले ज्ञानीके शत्रुओंका नाश करनेकी जिम्मेवारी मुझपर नहीं है ।] ऐसा विचारकर पण्डितजन (बुद्धिमान् लोग) मुझको ही भजते हैं । वे ज्ञान प्राप्त होनेपर भी भक्तिको नहीं छोड़ते ॥ ५ ॥

दो०— काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मोह कै धारि ।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद मायारूपी नारि ॥ ४३ ॥

काम, क्रोध, लोभ और मद आदि मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है । इनमें मायारूपिणी (मायाकी साक्षात् मूर्ति) स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है ॥ ४३ ॥

सुनु मुनि कह पुरान श्रुति संता । मोह बिपिन कहँ नारि बसंता ॥
जप तप नेम जलाश्रय झारी । होइ ग्रीषम सोषइ सब नारी ॥

हे मुनि! सुनो, पुराण, वेद और संत कहते हैं कि मोहरूपी वन [को विकसित करने] के लिये स्त्री वसन्त-ऋतुके समान है । जप, तप, नियमरूपी सम्पूर्ण जलके स्थानोंको स्त्री ग्रीष्मरूप होकर सर्वथा सोख लेती है ॥ १ ॥

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरषप्रद बरषा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥

काम, क्रोध, मद और मत्सर (डाह) आदि मेढक हैं । इनको वर्षा-ऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एकमात्र यही (स्त्री) है । बुरी वासनाएँ कुमुदोंके समूह हैं । उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद्-ऋतु है ॥ २ ॥

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा । होइ हिम तिन्हहि दहइ सुख मंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई । पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥

समस्त धर्म कमलोंके झुंड हैं । यह नीच (विषयजन्य) सुख देनेवाली स्त्री हिम-ऋतु होकर उन्हें जला डालती है । फिर ममतारूपी जवासका समूह (वन) स्त्रीरूपी शिशिर-ऋतुको पाकर हरा-भरा हो जाता है ॥ ३ ॥

पाप उलूक निकर सुखकारी । नारि निबिड़ रजनी अँधिआरी ॥
बुधि बल शील सत्य सब मीना । बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥

पापरूपी उल्लुओंके समूहके लिये यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है । बुद्धि, बल, शील और सत्य—ये सब मछलियाँ हैं और उन [को फँसाकर नष्ट करने] के लिये स्त्री बंसीके समान है, चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं ॥ ४ ॥

दो० — अवगुन मूल सूलप्रद प्रमदा सब दुख खानि ।

ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जियँ जानि ॥ ४४ ॥

युवती स्त्री अवगुणोंकी मूल, पीड़ा देनेवाली और सब दुःखोंकी खान है । इसलिये हे मुनि ! मैंने जीमें ऐसा जानकर तुमको विवाह करनेसे रोका था ॥ ४४ ॥

सुनि रघुपति के बचन सुहाए । मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती । सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥

श्रीरघुनाथजीके सुन्दर वचन सुनकर मुनिका शरीर पुलकित हो गया और नेत्र [प्रेमाश्रुओंके जलसे] भर आये । [वे मन-ही-मन कहने लगे—] कहो तो किस प्रभुकी ऐसी रीति है, जिसका सेवकपर इतना ममत्व और प्रेम हो ॥ १ ॥

जे न भजहिं अस प्रभु भ्रम त्यागी । ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद । सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥

जो मनुष्य भ्रमको त्यागकर ऐसे प्रभुको नहीं भजते, वे ज्ञानके कंगाल, दुर्बुद्धि और अभागे हैं । फिर नारद मुनि आदरसहित बोले—हे विज्ञान-विशारद श्रीरामजी ! सुनिये— ॥ २ ॥

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा । कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ । जिन्ह ते मैं उन्ह कें बस रहऊँ ॥

हे रघुवीर ! हे भव-भय (जन्म-मरणके भय) का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपा कर संतोंके लक्षण कहिये । [श्रीरामजीने कहा—] हे मुनि ! सुनो, मैं संतोंके गुणोंको कहता हूँ, जिनके कारण मैं उनके वशमें रहता हूँ ॥ ३ ॥

षट बिकार जित अनघ अकामा । अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमित बोध अनीह मितभोगी । सत्यसार कबि कोबिद जोगी ॥

वे संत [काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—इन] छः विकारों (दोषों) को जीते हुए, पापरहित, कामनारहित, निश्चल (स्थिरबुद्धि), अकिञ्चन (सर्वत्यागी), बाहर-भीतरसे पवित्र, सुखके धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान्, योगी, ॥ ४ ॥

सावधान मानद मदहीना । धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥

सावधान, दूसरोंको मान देनेवाले, अभिमानरहित, धैर्यवान्, धर्मके ज्ञान और आचरणमें अत्यन्त निपुण, ॥ ५ ॥

दो०— गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह ।

तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहूँ देह न गेह ॥ ४५ ॥

गुणोंके घर, संसारके दुःखोंसे रहित और सन्देहोंसे सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरणकमलोंको छोड़कर उनको न देह ही प्रिय होती है, न घर ही ॥ ४५ ॥

निज गुण श्रवन सुनत सकुचाहीं । पर गुण सुनत अधिक हरषाहीं ॥
सम शीतल नहिं त्यागहिं नीती । सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥

कानोंसे अपने गुण सुननेमें सकुचाते हैं, दूसरोंके गुण सुननेसे विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं, न्यायका कभी त्याग नहीं करते। सरलस्वभाव होते हैं और सभीसे प्रेम रखते हैं ॥ १ ॥

जप तप व्रत दम संजम नेमा । गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा ॥
श्रद्धा क्षमा मैत्री दया । मुदिता मम पद प्रीति अमाया ॥

वे जप, तप, व्रत, दम, संयम और नियममें रत रहते हैं और गुरु, गोविन्द तथा ब्राह्मणोंके चरणोंमें प्रेम रखते हैं। उनमें श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, मुदिता (प्रसन्नता) और मेरे चरणोंमें निष्कपट प्रेम होता है ॥ २ ॥

विरति बिबेक विनय बिग्याना । बोध जथारथ वेद पुराना ॥
दंभ मान मद करहिं न काऊ । भूलि न देहिं कुमारग पाऊ ॥

तथा वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान (परमात्माके तत्त्वका ज्ञान) और वेद-पुराणका यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान और मद कभी नहीं करते और भूलकर भी कुमार्गपर पैर नहीं रखते ॥ ३ ॥

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत सीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुण जेते । कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥

सदा मेरी लीलाओंको गाते-सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरोंके हितमें लगे रहनेवाले होते हैं। हे मुनि! सुनो, संतोंके जितने गुण हैं, उनको सरस्वती और वेद भी नहीं कह सकते ॥ ४ ॥

छं०— कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे ।

अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुण निज मुख कहे ॥

सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।

ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ॥

‘शेष और शारदा भी नहीं कह सकते’ यह सुनते ही नारदजीने श्रीरामजीके चरणकमल पकड़ लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभुने इस प्रकार अपने श्रीमुखसे अपने भक्तोंके गुण कहे। भगवान्के चरणोंमें बार-बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोकको चले गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं, जो सब आशा छोड़कर

केवल श्रीहरिके रंगमें रँग गये हैं।

दो० — रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।

राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ॥ ४६ (क) ॥

जो लोग रावणके शत्रु श्रीरामजीका पवित्र यश गावेंगे और सुनेंगे, वे वैराग्य, जप और योगके बिना ही श्रीरामजीकी दृढ़ भक्ति पावेंगे ॥ ४६ (क) ॥

दीप सिखा सम जुबति तन मन जनि होसि पतंग।

भजहि राम तजि काम मद करहि सदा सतसंग ॥ ४६ (ख) ॥

युवती स्त्रियोंका शरीर दीपककी लौके समान है, हे मन! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मदको छोड़कर श्रीरामचन्द्रजीका भजन कर और सदा सत्संग कर ॥ ४६ (ख) ॥

मासपारायण, बाईसवाँ विश्राम

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने तृतीयः सोपानः समाप्तः।

कलियुगके सम्पूर्ण पापोंको विध्वंस करनेवाले श्रीरामचरितमानसका यह तीसरा सोपान समाप्त हुआ।

(अरण्यकाण्ड समाप्त)

~*~*~*~